ओ३म्

दयानन्दसन्देश

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट का मासिक पत्र

सितम्बर २०१४ Date of Printing = 5-9-2014
प्रकाशन दिनांक= 5-9-2014
वर्ष ४३ : अङ्क १०
दयानन्दाब्द : १९१
विक्रम-संवत् : भाद्रपद-आश्विन २०७१
सृष्टि-संवत् : १,९६,०८,५३,११५

संस्थापक : **स्व० ला० दीपचन्द आर्य**
सम्पादक (आदरी) : राजवीर शास्त्री
प्रकाशक व प्रबन्ध सम्पादक : धर्मपाल आर्य
सम्पादक : डॉ. अशोक कुमार
व्यवस्थापक : विवेक गुप्ता

कार्यालय :
दयानन्दसन्देश (मासिक)
४२७, नया बांस, मन्दिर वाली गली,
खारी बावली, दिल्ली-६
दूरभाष : २३९८५५४५, ४३७८११९१
चलभाष : ९६५०६२२७७८
E-mail : aspt.india@gmail.com

एक प्रति ५.०० रु० वार्षिक शुल्क ५०) रुपये
आजीवन सदस्यता ५००) रुपये
विदेश में २०००) रुपये

इस अंक के लेख

- प्यारी बहना...... २
- वेदोपदेश ३
- इतिहास को ४
- भारत में...... ८
- हम कृष्ण के.... १०
- शिवजी के..... १२
- संसद की दीवारों... १४
- पत्र १६
- हिन्दू जाति.... १७
- वेदों की.... १९
- हम सब प्राणी.... २४

सत्यार्थप्रकाश
प्रचार संस्करण – ३००० रुपये सैकड़ा
स्पेशल (सजिल्द) – ५००० रुपये सैकड़ा में प्राप्त करें।

प्यारी बहना

(राजेश बरनवाल, पार्क मार्केट, हीरापुर, धानबाद, झारखण्ड-826001)

दूर, बहुत दूर पर,
लड़कियों का एक झुण्ड, आते देखा।
लड़कियाँ क्या? वो तो थीं,
हँसती-खिलखिलाती, परियाँ-सरीखी।।

मदमाती, मटकाती, अँखियों की मल्लिका,
नटखट एवम्, शोख अदाओं वाली चंचल।
मेरी दृष्टि को, खींच लेती बरबस।
अपनी शोख अदाओं से, वह पल-पल।।

मेरे नेत्र-द्वय, उठते और गिरते,
मानो, मेरे साथ ही, वह छल करते।
उन नव-यौवनाओं की, सौन्दर्य-राशी।
मानो, मेरे लिए, बन गई मथुरा-काशी।।

उन नव-यौवनाओं के मध्य,
चल रही थी एक, अप्सरा मेनका।
मानो, उन टिमटिमाती, तारों के मध्य,
बिखेर रही थी, आभा चन्द्रमा का।।

जैसे ही, वह झुण्ड के पास आई,
वह मेनका, मुझे देख मुसकाई।
और वह, मानो उस झुण्ड से, बाहर निकली,
अरे, यह तो मेरी, प्यारी-सी बहन निकली।।

हाँ, वह तो, मेरी प्यारी-सी बहन थी,
प्यारा-सा नाम, है उसका जूली।

यदि, वह मेरी बहन, ना होती,
तो मेरे हृदय-मन्दिर में, क्या आता।
कनखियों से, देखते हुए, मैं उसकी,
अपूर्व सौन्दर्य-राशि को,
अपने सम्पूर्ण अंगों से पी रहा होता।।

परन्तु, मेरी बहन पर, पड़ते ही मेरी दृष्टि,
मानो, उसने मुझे स्वप्नों से जगाया, झकझोरा,
दूसरी भी तो, होती है, किसी की बहन
जैसे, मैं हूँ आपकी, प्यारी-सी बहन।।

हाँ दूसरी भी तो, होती है, किसी की बहन
जैसे, मै हूँ आपकी, प्यारी सी बहन।।
प्यारी सी बहन, हाँ, प्यारी सी बहन,
आपकी बहुत ही, प्यारी सी बहन।।

ओ३म्

परमेष्ठी प्रजापतिः ऋषिः। द्योविद्युतौ=स्वराड्ब्राह्मी पंक्तिःछन्दः। पंचमः स्वरः।

पुनः स यज्ञः कीदृशोऽस्ति किमर्थश्चानुष्ठेय इत्युपदिश्यते।।

फिर उक्त यज्ञ कैसा और क्यों उसका अनुष्ठान करना चाहिये, इस विषय का उपदेश किया जाता है।।

देवस्य॑ त्वा सवि॒तुः प्र॑स॒वेऽश्विनो॑र्बा॒हुभ्यां॑ पू॒ष्णो हस्ता॑भ्याम्। आद॑देऽध्व॒र॒कृतं॑ दे॒वेभ्य॒ऽइन्द्र॑स्य बा॒हुर॑सि दक्षि॑णः स॒हस्र॑भृष्टिः श॒तते॑जा वा॒युर॑सि ति॒ग्मते॑जा द्वि॒ष॒तो व॒धः।।यजु.1/24।।

पदार्थः– (देवस्य) सर्वानन्दप्रदस्य (त्वा) तम् (सवितुः) प्रेरकस्येश्वरस्य सूर्य्यस्य वा (प्रसवे) प्रेरणे ऐश्वर्य्यहितौ वा (अश्विनोः) सूर्य्याचन्द्रमसोरध्वर्य्वोर्वा। **अश्विनावध्वर्य्यू।। श. 1/2/4/4।।** (बाहुभ्याम्) बलवीर्य्याभ्याम् (पूष्णः) पुष्टिहेतोर्वायोः। **वृषा पूषा।। श. 2/5/1/11।।** (हस्ताभ्याम्) ग्रहणत्यागहेतुभ्यामुदानापानाभ्याम् (आददे) आसमन्तात्स्वीकरोमि (अध्वरकृतम्) अध्वरं करोति येन सामग्रीसमूहेन तम्। **अत्र कृतो बहुलमिति वार्तिकेन करणे क्विप्। अध्वरो वै यज्ञो यज्ञकृतम्।। श. 1/2/4/5।।** (देवेभ्यः) विद्वद्भ्यो दिव्यसुखेभ्यो वा (इन्द्रस्य) सूर्य्यस्य (बाहुः) वीर्य्यवत्तमकिरणसमूहस्थो यज्ञः (असि) भवति (दक्षिणः) प्राप्तः। **दक्ष गतिहिंसनयोरित्यस्मात्। द्रुदक्षिभ्यामिनन्।। उ. 2/50।। इतीन्प्रत्ययः। अनेन गतेरन्तर्गतः प्राप्त्यर्थो गृह्यते** (सहस्रभृष्टिः) सहस्राणि=बहूनि, भृष्टयः=पाका यस्मात्सः सूर्य्यस्य प्रकाशः। **सहस्रमिति बहुनामसु पठितम्।। निघं. 3/1।।** (शततेजाः) शतानि=बहूनि तेजांसि यस्मिन्स सूर्य्यः। **शतमिति बहु नामसु पठितम्।। निघं० 3/1।।** (वायुः) गमनागमनशीलः पवनः (असि) अस्ति। अत्र सर्वत्र व्यत्ययः (तिग्मतेजाः) तिग्मानि=तीक्ष्णानि तेजांसि भविन्त यस्मात्सः। **युजिरुचितिजां कुश्च।। उ. 1/146।। अनेन तिज निशाने इत्यस्मान्मक् प्रत्ययः कुत्वादेशश्च। तथैव। सर्वधातुभ्योऽसुन्।। उ. 4/189।। अनेन निज इत्यास्मादसुन्प्रत्ययः:** (द्विषतः) शत्रोः (वधः) नाशः।। **अयं मंत्रः श. 1/2/4। 3-7 व्याख्यातः।। 24।।**

सपदार्थान्वयः – अहं सवितुः प्रेरकस्येश्वरस्य **सूर्य्यस्य वा देवस्य** सर्वाऽऽनन्दप्रदस्य **प्रसवे** प्रेरणे ऐश्वर्य्यहितौ वा **अश्विनोः** सूर्य्याचन्द्रमसोरध्वर्य्वोर्वा **बाहुभ्याम्** बलवीर्य्याभ्यां **पूष्णः** पुष्टिहेतोर्वायोः **हस्ताभ्याम्** ग्रहणत्यागहेतुभ्यामुदानऽपानाभ्यां **देवेभ्यः** विद्वद्भ्यो दिव्यसुखेभ्यो वां **(त्वा)** तम् **अध्वरकृतम्** अध्वरं करोति येन सामग्री समूहेन तम् **आददे** समन्तात् स्वीकरोमि।

यो मयाऽनुष्ठितो यज्ञ इन्द्रस्य सूर्य्यस्य सहस्रभृष्टिः सहस्राणि=बहूनि भुष्टयः=पाका यस्मात् **स सूर्य्यस्य प्रकाशः** शततेजाः शतानि=बहूनि तेजांसि यस्मिन्त्स सूर्य्यो **दक्षिणः** प्राप्तो **बाहुः** वीर्य्यवत्त्मकिरणसमूहस्थो यज्ञो **असि=भवति।**

यस्येन्द्रस्य=सूर्य्यलोकस्य मेघस्य वा तिग्म तेजाः तिग्मानि=तीक्षणानि तेजांसि भवन्ति यस्मात् सः, **वायुः** गमनाऽऽगमनशीलः पवनो

भाषार्थ :– मैं (सवितुः) आत्मा में प्रेरणा करने वाले ईश्वर वा सूर्य जो (देवस्य) सब आनन्द के देने वाले हैं उनकी (प्रसवे) प्रेरणा वा ऐश्वर्य प्राप्ति के निमित्त (अश्विनोः) सूर्य-चन्द्रमा अथवा अध्वर्युवों के (बाहुभ्याम्) बल-वीर्य रूप बाहुओं से तथा (पूष्णः) पुष्टिकर्त्ता वायु के (हस्ताभ्याम्)- ग्रहण और त्याग करने वाले उदान-अपान रूप हाथों से (देवेभ्यः) विद्वानों वा दिव्य सुखों की प्राप्ति के लिए (त्वा) उस (अध्वरकृतम्) यज्ञ की सामग्री को (आददे) ग्रहण करता हूँ।

मेरे द्वारा किया हुआ यज्ञ (इन्द्रस्य) सूर्य का (सहस्रभृष्टिः) नाना पदार्थों का पाक करने वाला (शततेजाः) नाना तेजों वाला (दक्षिणः) सब कर्मों में प्राप्त होने वाला (बाहुः) अत्यन्त बलवान् किरण समूह रूप दक्षिण बाहु (असि) है, जिस (इन्द्रस्य) सूर्यलोक वा मेघ का (तिग्मतेजाः) तीक्ष्ण तेज वाला (वायुः) गमन-आगमन स्वभाव वाला वायु कारण (असि) है, उससे सुखों की सिद्धि और (द्विषतः) शत्रुओं का (वधः) नाश करना चाहिये।।1/24।।

भावार्थः– ईश्वर आज्ञापयति-मनुष्यैः सम्यक्! संपादितोऽयं यज्ञोऽग्निोर्ध्वं प्रक्षिप्तद्रव्यः सूर्यकिरणस्थो वायुना धृतः सर्वोपकारी भूत्वा सहस्राणि सुखानि प्रापयित्वा दुःखानां नाशकारी भवतीति।। 1/24।।

भावार्थ– ईश्वर आज्ञा देता है कि मनुष्यों से अच्छी प्रकार सिद्ध किया हुआ यज्ञ जो कि अग्नि से होम किये द्रव्यों को ऊपर ले जाने वाला, सूर्य की किरणों से स्थित हुआ तथा पवन से धारण किया हुआ सबका उपकारी होकर सहस्रों सुखों को प्राप्त कराकर, दुखों का विनाश करने वाला होता है।। 1/24।।

इतिहास को बिगाड़ती कहानियां (६)

(राजेशार्य आट्टा)

प्रिय पाठकवृन्द! वर्तमान भारतीय समाज में खान-पान, रहन-सहन, वेश-भूषा आदि से सम्बन्धित जो परिवर्तन आया है, उसमें सिनेमा ने विशेष भूमिका निभाई है। यह परिवर्तन अधिकतर नकारात्मक ही हुआ है। क्योंकि फिल्म-नाटक आदि बनाने वालों का धन्धा तो अतिरंजित काल्पनिक प्रेम कहानियाँ दिखाकर ही चलता है। अतः उन्होंने इतिहास के नाम जोधाबाई और अकबर को पकड़कर ऐसी प्रेम कहानी गढ़ी कि बिना तिल के ही ताड़ बना दिया। कई वर्ष पूर्व बनी फिल्म 'मुगल-ए-आज़म' की नकल पर 'जोधा-अकबर' नाटक बना, तो उसका हिन्दू (मुख्यतः राजपूत) और मुस्लिम दोनों की ओर से विरोध हुआ। राजपूतों की तरफ से आपत्ति यह थी कि राजपूतों ने कभी अपनी बेटी मुस्लिम बादशाह को नहीं दी, उनके नाम पर दासी-पुत्रियाँ दी गई थीं। वैसे भी यह (जोधा-अकबर) विवाह प्रेम-प्रसंग के चलते नहीं हुआ था।

मुस्लिमों (बहादुरशाह ज़फर के वंशज शहज़ादा याकूब जियाउद्दीन तुसी आदि) की आपत्ति का कारण था कि जोधाबाई अकबर के बेटे सलीम (जहाँगीर) की पत्नी थी, नाटक में उसका अकबर से प्रेम प्रसंग दिखाकर मुगलवंश को बदनाम किया गया है। तुसी ने भारतीय सुप्रीम कोर्ट में याचिका दायर कर कहा था कि फिल्म में जोधा की जगह हरखाबाई नाम प्रयोग होना चाहिए। 1572 में जन्मी जोधाबाई का विवाह जहाँगीर से हुआ था।

ये दोनों पक्ष आधे-आधे सत्य को लेकर खड़े हैं। यह अच्छा है कि सपूत (सुपुत्र) अपने पूर्वजों की बदनामी को ढंकते हैं अर्थात् उन पर लगे किसी गलत काम के आरोप को नकारते हैं, पर नकारने से अच्छा है, उसकी पुनरावृत्ति न होने देना। सम्भव है, उस काल के वे राजपूत ऐसी परिस्थिति से जूझने की अपेक्षा उसके आगे झुक गये हों और उस परिस्थिति से निपटने का एकमात्र उपाय उन्हें अपनी बेटी को शाही हरम में भेजना ही दिखाई दिया हो। क्योंकि कई पीढ़ियों तक विदेशी शासक के लिए स्वधर्म व स्वदेश बन्धुओं का रक्त बहाने में जिनको लज्जा नहीं आई, ऐसे स्वार्थी लोग किसी भी हद तक गिर सकते हैं।

मेवाड़ के महाराणा आज भी आदर पाते हैं क्योंकि उन्होंने स्वतंत्रता की लड़ाइयाँ लड़ीं व अपनी कोई राजकुमारी मुगलों को नहीं दीं। महाराणा अमरसिंह द्वितीय ने 1708 ई० में आमेर के सवाई जयसिंह के साथ अपनी पुत्री चन्द्र कुँवरी का विवाह इस शर्त पर किया था कि उससे उत्पन्न राजकुमारियाँ मुगलों को नहीं दी जाएँगी।

'राजस्थान का संक्षिप्त इतिहास' में श्री सुखवीर सिंह गहलोत ने लिखा है - "अब तो यहाँ तक कहा जाने लगा है कि यदि कुछ वैवाहिक सम्बन्ध हुए थे वे केवल राजवंश की दरोगनों व गोलियों को राजकुमारियाँ बतलाकर किये गये। ऐसी दशा में यह विचारणीय है कि क्या मुगलों की गुप्तचर सेवा इतनी कमजोर थी कि वह इतना बड़ा धोखा खा गई। यों जैसलमेर के एक शिलालेख में हरिराज की पुत्री नाथी बाई का उल्लेख है कि उसका विवाह बादशाह अकबर से हुआ था। अतः यह निर्विवाद है कि राजकुमारियों का ही विवाह मुगल बादशाहों से हुआ था।" (पृष्ठ 371)

अब दूसरी बात आती है कि यह विवाह किसके

साथ हुआ था। नाटक, फिल्म या कहानी के माध्यम से समाज में यही प्रचलित है कि आमेर के राजा भारमल (मानसिंह के दादा) की बेटी जोधाबाई का अकबर से विवाह हुआ था। जबकि डॉ० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, श्री सुखवीर सिंह गहलोत, पी.एन. ओक, प्रो. सतीश चन्द्र, डॉ. गोपीनाथ शर्मा आदि इतिहासकारों ने लिखा है कि भारमल की पुत्री हीरकंवर, हरखा बाई या मानमती का अकबर से विवाह हुआ था जो बाद में मरियम उज्जमानी बना दी गई थी। जबकि जोधपुर के मोटा राजा उदयसिंह की पुत्री मानीबाई (जगत गुसाई) का विवाह अकबर के बेटे जहाँगीर के साथ हुआ था। वह जोधपुर की होने के कारण जोधाबाई कहलाई थी। खुर्रम (शाहजहाँ) उसी का बेटा था। जबकि अकबर से सम्बन्ध वाली हीरकंवर का बेटा था सलीम (जहांगीर)। सम्भव है भविष्य में इतिहास में कोई और खोज हो और असली जोधाबाई का पता चले, पर वर्तमान में तो इतिहासकार यही मानते हैं।

अब हम अगले विषय पर चर्चा करते हैं कि क्या राजा भारमल की बेटी हीरकंवर का शादी से पूर्व ही अकबर के प्रति आकर्षण था, जिसके परिणामस्वरूप वे दोनों अलग-अलग मजहब के होने पर भी विवाह के बन्धन में बंध गये? क्या राजा भारमल ने अपनी इच्छा से अपनी पुत्री का विवाह विधर्मी अकबर के साथ किया? तो फिर उसका धर्म परिवर्तन क्यों किया गया? वह हरखा बाई से मरियम उज्जमानी क्यों बनाई गई? उसके पुत्र का नाम सलीम क्यों रखा गया? मरने के बाद उसे कब्र में क्यों दफनाया गया? उसके बेटे सलीम के साथ उसकी भतीजी मानबाई (मानसिंह की बहन) व मानसिंह की पोती का भी विवाह क्यों हुआ? ये राजपूत बेगमें (मरियम उज्जमानी, जगत गुसाई आदि) अपने बेटों (जहाँगीर, शाहजहाँ आदि) में एक भी हिन्दू संस्कार नहीं डाल सकीं। हिन्दुओं के प्रति उदारता बरतने की भी शिक्षा नहीं दे सकीं और भोले हिन्दू आज भी उन्हें आधा व तीन चौथाई हिन्दू मानकर खुश होते हैं। इन विवाहों को हिन्दू-मुस्लिम एकता का प्रतीक मानने वाले भोले भक्तों को यह भी पता नहीं कि इन बादशाहों ने हिन्दुओं की लड़कियों से विवाह किये पर किसी हिन्दू को अपनी लड़की नहीं ब्याही। इतना ही नहीं जहाँगीर और शाहजहाँ ने तो मुस्लिम लड़कियों से विवाह करने वाले हिन्दुओं को इस्लाम या मौत में से एक को चुनने का नियम बनाया था। सैकड़ों हिन्दू-मुस्लिम औरतों से अपने हरम को भरने वाले इन बादशाहों को अपनी बेटियों को जीवन भर अविवाहित रखते हुए तनिक भी पीड़ा नहीं हुई। अकबर की बेटी आराम बानो, जहाँगीर की बेटी सुल्तुन्निसा और शाहजहाँ की बेटी जहाँआरा जीवन भर अविवाहित रही। रोशनआरा को औरंगजेब के शासनकाल में लगभग 40 वर्ष की अवस्था में विवाह करने की अनुमति मिली।

हरखा बाई और अकबर के विवाह को प्रेम विवाह कहने वाले लोग भूल गये कि तत्कालीन राजपूती परम्परा में अपनी बेटी किसी विधर्मी को स्वेच्छा से देने की अपेक्षा उसे जौहर की ज्वाला में भस्म कर देना कहीं अच्छा समझा जाता था। श्री राजेन्द्र सिंह बीदासर ने राजपूतों की गौरव गाथा में लिखा है- "1561 ई० में मेवात अलवर के मुगल सूबेदार सरफुद्दीन ने राजा भारमल के आमेर राज्य पर चढ़ाई कर दी। भारमल आत्मरक्षा के लिए पहाड़ों में जा छिपा परन्तु मुगलों ने भारमल के पुत्र जगन्नाथ तथा उसके भतीजे राजसिंह और खंगार को बन्दी बना लिया। मुगलों ने भारमल से एक मोटी रकम की माँग भी की। भारमल बहुत दबाव में था और वह अपने परिवार और राज्य के अन्त को बचाना चाहता था। पूर्ण विनाश राजा के सामने था। अतः असहाय होकर उसने अकबर से सम्बन्ध जोड़ा। इस प्रकार (जनवरी) "1561 ई० में ज़ब अकबर अजमेर जा रहा था, तो राजा भारमल उससे मिला। सरफुद्दीन ने भारमल

को भारी नुकसान पहुँचाया था। अतः भारमल ने (बेटों व राज्य की रक्षा के लिए) अपनी पुत्री के विवाह का अकबर से प्रस्ताव किया, जिसे उसने स्वीकार कर लिया। अजमेर से लौटते हुए सांभर में अकबर ने जगन्नाथ, राजसिंह और खंगार को मुक्त कराया और वहीं भारमल की पुत्री मानमती (हरखा बाई) से निकाह किया। मानमती का नाम मरियम जमानी रखा गया।" (पृ० 247-248)

असहाय पिता की लाचारी समझकर इसे माफ किया जा सकता है, पर उस (भारमल) के बेटे भगवानदास ने अपनी बहन मरियम से उत्पन्न जहाँगीर को अपनी बेटी मानबाई क्यों ब्याही? अकबर के सेनापति मानसिंह की यह बहन 1604 ई० में आत्महत्या करके मरी और इसके बेटे खुसरों की जहाँगीर ने आँखें निकाल ली व बाद में शाहजहाँ ने विष पिलाकर मार दिया। इसकी बेटी सुल्तुन्निसा 60 वर्ष तक अविवाहित रहकर मरी। सबकुछ देखते जानते हुए भी मानसिंह ने उसी जहाँगीर के हरम के नरक में अपनी पोती के भी यौवन की भेंट चढ़ा दी। अहो, विवेक भ्रष्टानां भवति विनिपातः शतमुखः। (नष्ट ज्ञान वालों का सैकड़ों प्रकार से पतन होता है)।

राजा मानसिंह की बुआ मरियम उज्जमानी (फिल्म वालों की जोधाबाई) जब मरी (1623 ई०) तो तब जहाँगीर अजमेर में था। वह न तो अपनी माँ के दर्शन करने आगरा गया और न उसने अपनी आत्मकथा में (तुजु के जहाँगीरी में) कोई श्रद्धाँजलि व्यक्त की। इतिहास तो यही बताता है, फिल्म वाले कैसी भी कल्पना करें। इतिहास की मजबूरी को प्रेम-आख्यान बनाने वाले क्या इन महान मुगल सम्राटों के हरम की दुर्दशा पर प्रकाश डालने की हिम्मत दिखाएंगे, जहाँ लूट के माल में घसीट कर लाई गई, पिता व पति आदि को डरा-धमकाकर छीनी गई सैकड़ों-हजारों हिन्दू-मुस्लिम औरतें बादशाह या किसी व्यक्ति की प्रतीक्षा करते-करते अपना यौवन सुखा गई? सर टामस रो, वर्नियर जैसे विदेशी लेखक (यात्री) तो उनकी पीड़ा को व्यक्त कर गये, पर उन बेचारी अबलाओं के आँसुओं पर छन्द लिखने के लिए सिनेमा के कवियों की स्याही सूख गई है।

अच्छा हुआ गोंडवाना की वीरांगना रानी दुर्गावती अपना शौर्य दिखाकर अन्त में आत्महत्या कर गई, अन्यथा उसे भी उसकी बहन कमलावती व पुत्रवधू की तरह अकबर के हरम में धकेल दिया जाता। मालवा को तबाह कर जब लूट के माल के साथ सैकड़ों औरतें भी अकबर के पास भेजी जा रही थी, तो बाज बहादुर की प्रेयसी रूपमती ने अकबर या उसके सेनापति आधम खाँ के हरम में जाने से मना कर दिया और विष खाकर आत्महत्या कर ली। काश! जयपुर, जोधपुर आदि की राजकुमारियों ने भी बेगम बनने की अपेक्षा ऐसा ही कदम उठाया होता या फिर किशनगढ़ की राजकुमारी चारुमति (चंचल) की तरह राणा राजसिंह जैसे किसी वीर को अपनी सहायता के लिए पुकारकर क्षत्रियों के सोये स्वाभिमान को जगाया होता, तो भारत का इतिहास बदल जाता। देखिये-

किशनगढ़ का राजा रूपसिंह शाहजहाँ की सेवा में रहकर अनेक युद्धों में भाग लेता रहा। जून 1658 ई० में सामूगढ़ के उत्तराधिकार सम्बन्धी युद्ध में दारा की ओर से लड़ता हुआ वीरगति को प्राप्त हुआ। तब उसका तीन वर्ष का पुत्र मानसिंह गद्दी पर बैठा। औरंगजेब ने मानसिंह की बहन चारूमति की सुन्दरता के विषय में सुना, तो उसने चारुमति से शादी करने का पैगाम किशनगढ़ को भेज दिया। किशनगढ़ वाले विरोध करने की स्थिति में नहीं थे, अतः मजबूर होकर उन्हें यह प्रस्ताव स्वीकार करना पड़ा। क्योंकि उनके सामने मुगलों का विनाशकारी इतिहास था। (अकबर ने अपने अधीनस्थ बूँदी के राव भोज पर दबाव डाला कि वह अपनी पुत्री का विवाह उसके साथ करे। इस पर राव भोज ने बिना सगाई किए ही कह दिया कि उसकी सगाई तो कल्ला राठौड़ से हो चुकी है। जब अकबर ने कल्ला राठौड़ से पूछा तो उसने भी हिन्दुत्व के गौरव की रक्षा

भारत में शिक्षा की परम्परा

(उत्तरा नेरुर्कर, बंगलौर, मो. 09845058310)

भारत विश्व की सबसे प्राचीन जीवित सभ्यता है। इस जीवन्तता का कारण उसकी परम्पराएँ हैं। इन परम्पराओं के मूल में वेदोपदेश हैं। इस उपदेश को सर्वोपरि मान्यता देते हुए, भारतीयों ने इसके द्वारा प्रतिपादित संस्कारों की रक्षा करने का भरसक प्रयत्न किया। इनमें से एक आदेश है ब्रह्मचर्य, या विद्या-ग्रहण। भारतीय मानसिकता में इसके कुछ आयामों को इस लेख में मैंने प्रदर्शित किया है।

1. **ज्ञान का महत्व-** ऋषियों ने प्राचीन काल में ही विद्या की महत्ता को स्थापित कर दिया-

न हायनैर्न पलितैर्न वित्तेन न बन्धुभिः।
ऋषयश्चक्रिरे धर्मं योऽनूचानः स नो महान्।।
मनुस्मृति 2/154।।

वह महान् नहीं होता जो आयु में वृद्ध हो, या जिसके केश श्वेत हो गये हों, या जिसके भाई-बन्धु महान् हों, अर्थात् उच्च कुल से हो। वैदिक ऋषि यह नियम बना गए हैं कि जो ज्ञानी है, वही हममें महान् है। जबकि आजकल सर्वत्र पैसे का बोलबाला अधिक है, तथापि भारत में ज्ञान को आज भी विशेष आदर प्रदान किया जाता है।

2. ज्ञान-प्राप्ति के स्रोत आचार्यात् पादमादत्ते पादं शिष्यः स्वमेधया।
पादं सब्रह्मचारिभ्यः पादं कालक्रमेण च।।
सुभाषितम्।।

शिष्य ज्ञान का एक चौथाई भाग आचार्य से पाता है; दूसरा चौथाई अपनी बुद्धि से, अपनी समझ-बूझ, चिन्तन-स्वाध्याय से पाता है; तीसरा चौथाई भाग अपने सहपाठियों से प्राप्त करता है- उनकी समझ से उसे भी लाभ होता है; और अन्तिम चौथाई भाग वह अनुभव से प्राप्त करता है। हम सभी ने इस वाक्य की सत्यता को अवश्य ही जाना होगा। संक्षेप में श्लोक में सारे ज्ञान के स्रोत समा गए।

3. ज्ञान-प्राप्ति के लिए अत्यधिक संयम आवश्यक- भारत में अध्ययन-काल में अनुशासन का महत्व सदा से बताया गया है। मनु ने संयम के विषय में कहा है-

वशे कृत्वेन्द्रियग्रामं संयम्य च मनस्तथा।
सर्वान्संसाधयेदर्थानक्षिण्वन् योगतस्तनुम्।।
मनुस्मृतिः 2/100।।

ज्ञानार्थी को पाँचों ज्ञानेन्द्रिय - चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा और त्वक् - व पाँचों कर्मेन्द्रिय - दो हाथ, दो पैर, वाक्, पायु व उपस्थ - और ग्यारहवें मन को अपने वश में रखना चाहिए। योगासन और ध्यान के द्वारा उसे अपने शरीर और मन की शक्ति को क्षीण नहीं होने देना चाहिए। तब वह विद्या-सम्बन्धी अपने सारे लक्ष्यों को प्राप्त कर लेगा/लेगी।

कुछ क्रियाएँ ब्रह्मचारी/ब्रह्मचारिणी को वर्जित हैं। मनु ने इनको इस प्रकार बताया है-

द्यूतं च जनवादं च परिवादं तथानृतम्।
स्त्रीणां प्रेक्षणालम्भमुपघातं परस्य च।।
मनुस्मृतिः 2/179।।

विद्यार्थी को ये वर्जित हैं- जुआ खेलना, इधर-उधर की बातें करना, निन्दा करना- विशेषकर आचार्यकुल और वृद्धों की, झूठ बोलना, लड़कों का लड़कियां को देखना या लड़कियों का लड़कों को देखना या उनसे शारीरिक सम्बन्ध करना, किसी को मारना या आघात पहुंचाना। वेसे तो आज भी भारतीय माता-पिता अपने बच्चों को इन बातों की शिक्षा देते हैं, परन्तु पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव से इनका उपदेश व प्रचलन कम होता

देखा जा रहा है।

4. गुरु सेवा- भारतीय संस्कृति में गुरु को बहुत आदर का स्थान दिया गया है। शिष्य गुरुकुल में रहता है, और गुरु के साथ उसका परिवार जैसा सम्बन्ध होता है। इसलिए उससे उसके योग्य गुरु-सेवा भी अपेक्षित होती है आश्रम के छोटे-मोटे काम, गुरु के कुछ निज काम शिष्य किया करते थे। इससे उनका मान कम नहीं होता था, अपितु गुरु के प्रति उनका प्रेम, और गुरु का उनके प्रति प्रेम बढ़ा करता था, उनके सम्बन्ध घनिष्ठ हो जाते थे। इस प्रेम के कारण गुरु शिष्य को अपने ज्ञान से अधिक से अधिक देना चाहता था, और शिष्य भी गुरु से द्रोह नहीं करता था। उसके लिए उपदेश था-

यथा खनन् खनित्रेण नरो वार्यधिगच्छति।
तथा गुरुगतां विद्यां शुश्रुषुरधिगच्छति।।

मनुस्मृतिः 2/218।।

जिस प्रकार फावड़े से धरती को खोद-खोद कर, मनुष्य जल को प्राप्त कर लेता है, उसी प्रकार विद्यार्थी गुरु की सारी विद्या गुरु-सेवा से प्राप्त कर लेता है।

आज तो इस प्रथा का बिल्कुल भी प्रचलन नहीं है। गुरु का शिष्य पग-पग पर निरादर करते हैं, उसकी किसी प्रकार की सेवा-शुश्रुषा तो बहुत दूर की बात है। फिर क्या आश्चर्य है कि ज्ञान का स्तर भी भारतवर्ष में गिर रहा है।

5. गुरु-शिष्य का परस्पर व्यवहार- गुरु और शिष्य को एक-दूसरे के विषय में किस प्रकार का सौहार्द रखना वह इस प्रार्थना में निहित है-

सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्यं करवावहै। तेजस्विनावधीतमस्तु। मा विद्विषावहै।।

गुरु और शिष्य अध्ययन प्रारम्भ करने से पहले प्रार्थना करते हैं- हे प्रभो! आप हम दोनों की साथ-साथ रक्षा कीजिए जिससे कि किसी आपदा के कारण हमारे अध्ययन में विघ्न न आए। हमारा भरण-पोषण करते रहिए जिससे कि किसी भी शारीरिक आवश्यकता के कारण हमें अध्ययन छोड़ना न पड़े। एक-साथ हमारे सामर्थ्य को बढ़ाइये कि हम अधिकाधिक पढ़ पढ़ा सकें। हमारे पढ़े हुए को, प्रभो! आप तेजस्वी कर दीजिये- हम उस विद्या को और आगे ले जाएँ, और खोज करें, और प्रयोग करें। कभी भी हम एक-दूसरे से द्वेष न करें।

अन्य सब नियम तो आवश्यक हैं ही, परन्तु आज के युग में इस अन्तिम नियम का सबसे अधिक महत्त्व है। जहाँ शिक्षक और छात्र में परस्पर प्रेम नहीं होगा, वहाँ विद्या का आदान-प्रदान भी रुक जाता है। इस प्रकार से यह गुरु-शिष्य के लिए एक सम्पूर्ण प्रार्थना है। आजकल के विद्यालय प्रतिदिन यदि इस प्रार्थना से अपना दिन आरम्भ करें, तो सम्भवतः, दोनों शिक्षक और छात्र के मन में विद्या के महत्त्व का बोध जगे।

6. गुरु-शिष्य का आत्मीय सम्बन्ध- शिक्षा के विषय में वैदिक परिपाटी तो कुछ और ही है।

आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्तः। तं रात्रीस्तिस्र उदरे विभर्ति तं जातं द्रष्टुमभिसंयन्ति देवाः।।

अथर्व. 11/5/3।।

वेद तो इस मन्त्र द्वारा बताता है कि आचार्य माता के समान है। वह उपनयन करके आश्रम लाए हुए ब्रह्मचारी को जैसे अपने गर्भ के अन्दर स्थापित कर लेता है। फिर तीन रातों के लिए वह उसे अपने उदर में पालता है। इसके बाद, जब वह शिष्य को 'जन्म' देता है, तो सब विद्वत् जन उसे देखने के लिए सम्मिलित होते हैं, जिस प्रकार नवजात शिशु को देखने के लिए सब बन्धु-बान्धव घर में जुड़ते हैं। मन्त्र में 'तीन रातों' का अर्थ है तीन प्रकार का अविद्या - अन्धकार - आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक। इन तीनों अन्धकारों को गुरु शनैः-शनैः दूर करता है इसीलिए गुरुकुल जाने की प्रथा थी- घर पर माता-पिता जो गलत संस्कार अज्ञानवश दे दें, उनका भी निराकरण गुरु को करना होता था। तब बच्चे का

शेष पृष्ठ 20 पर

हम योगीराज श्री कृष्ण के सही रूप को पहिचानें

–धर्मपाल आर्य

पिछले माह योगीराज श्री कृष्णजी का जन्म दिन कृष्ण जन्माष्टमी के रूप में पूरे देश में हर्ष और उल्लास के साथ मनाया गया। आर्य समाज ने अपने ढंग से श्री कृष्ण को याद किया तथा पुराण पन्थियों ने अपने ढंग से श्री कृष्ण को याद किया। एक महापुरुष को एक देश के वासी अलग-अलग तरीके से याद करें, अलग-अलग तरीके से उसके व्यक्तित्व को भाषित परिभाषित करें, अलग-अलग तरीके से उसके गुणों का व्याख्यान करें तो इस स्थिति से एक प्रश्न उत्पन्न होता है कि ऐसा क्यों हो रहा है और उसमें सत्य कौन है? पहले मैं इस प्रश्न पर कुछ लिखँ कि ऐसा क्यों हो रहा है उससे पूर्व में अपने पाठकों को बताना चाहता हूँ कि आर्यसमाज श्री कृष्ण के व्यक्तित्व अथवा जीवन का आधार प्रमाणिक रूप से महाभारत को मानता है जबकि पौराणिक जगत् श्री कृष्ण के जीवन का आधार पुराणों को मानता है। श्रीकृष्ण के विषय में महाभारत और पुराणों का नजरिया अधिक भिन्नताएं लिए हुए हैं। एक महापुरूष के जीवन को विपरीत धाराओं में ले जाकर उसकी अविश्वसनीय व्याख्या करने का कार्य समाज को तो भ्रमित करता ही है साथ साथ उस महापुरुष के साथ भी विश्वासघात है। महर्षि दयानन्द जी ने स.प्र. में श्री कृष्ण को आप्त पुरुष कहा है। स्वामी जी की श्री कृष्ण के विषय में धारणा महाभारत के अधिक निकट है। प्रश्न था कि महाभारत के महानायक के गुणों का अलग अलग तरीके से किये जाने वाले व्याख्यान का, अलग अलग तरीके से जीवन को भाषित परिभाषित करने का और अलग-अलग तरीके से उनको याद करने का क्या कारण है? अथवा ऐसा क्यों हो रहा है? ऐसा इसलिए हो रहा है कि विश्व के अधिकांश लोग महाभारत के कृष्ण और पुराणों के कृष्ण में कोई भेद नहीं मानते हैं, उनका मानना है कि श्री कृष्ण का जो चरित्र पुराणों में है वही महाभारत में है और जो महाभारत में वही कृष्ण का चरित्र पुराणों में है। अब प्रश्न यह हैं कि महाभारत के कृष्ण असली कृष्ण है अथवा पुराणों के कृष्ण असली कृष्ण है! इस सम्बन्ध में मेरा एक ही विचार है जिसे पढ़कर पाठकगण असली कृष्ण और नकली कृष्ण का निर्णय कर सकेंगे; क्योंकि पुराणों के कृष्ण का चरित्र अधिकांश कल्पना पर आधारित है जबकि महाभारत के कृष्ण का चरित्र वास्तविकता पर आधारित है। पुराणों के अनुसार कृष्ण भोगी हैं जबकि महाभारत के कृष्ण योगी हैं। पुराणों के अनुसार कृष्ण सोलह हजार रानियों के पति हैं जबकि महाभारत के अनुसार श्रीकृष्ण एक पत्नीव्रत हैं। पुराणों के अनुसार श्रीकृष्ण राधा के प्रेमी हैं जबकि महाभारत में श्री कृष्ण केवल रुक्मिणी के पति हैं। पुराणों में श्री कृष्ण के निजी जीवन की अतिशयोक्तिपूर्ण कल्पनाधारित व्याख्या हैं जबकि महाभारत में सत्य तथ्याधारित व सार्वजनिक व सामाजिक जीवन जीने वाले श्री कृष्ण के जीवन की झाँकी है। पुराणों में श्री कृष्ण के व्यक्तित्व का बाह्यपक्ष ही भाषित-परिभाषित हुआ हैं महाभारत में उनके व्यक्तित्व के हर आन्तरिक पहलू को छुआ गया है। हमारे यहाँ जो जन्माष्टमी का पर्व मनाया जाता है वह महाभारत के श्रीकृष्ण का नहीं अपितु पुराणों के श्री कृष्ण का है। जिन कवियों ने श्रीकृष्ण की भक्ति में काव्य रचना की है उनके काव्य पर भी पुराणों के कृष्ण की छाया है। यही कारण है कि मीरा, रसखान और सूरदास जैसे कवियों ने अपने समूचे काव्य में पुराणों के श्रीकृष्ण का वर्णन किया है। पुराणों के श्री कृष्ण भी अलग हैं। यदि मैं पुराणों के श्रीं कृष्ण का वर्णन करने लगूँ तो एक बड़ा ग्रन्थ तैयार हो सकता है किन्तु मुझे यह लिखने में कतई संकोच नहीं कि पुराणों के कृष्ण की समाज व राष्ट्र के लिए कोई उपयोगिता नहीं है। महाभारत के

श्री कृष्ण ही हम सबके आदर्श हैं, महाभारत के श्रीकृष्ण कूटनीतिज्ञ होने के साथ-साथ एक सफल राजनीतिज्ञ हैं; महाभारत के श्रीकृष्ण आप्त पुरुष हैं, महाभारत के श्रीकृष्ण उदात्त चरित्र के धनी हैं, महाभारत के श्री कृष्ण योगी हैं, महाभारत के श्रीकृष्ण निर्णय लेने में सक्षम हैं, महाभारत के श्री कृष्ण की राजनीति धर्म की स्थापना के लिए है और धर्म राजनीति का उद्धार करने के लिए है, महाभारत के श्रीकृष्ण धर्मनिष्ठ और कर्मनिष्ठ हैं, महाभारत में भीष्म की निष्ठा राजा के प्रति है जबकि श्रीकृष्ण की निष्ठा राष्ट्र के प्रति है, महाभारत के श्री कृष्ण के लिए भीष्म पितामह के राजधर्म से बड़ा राष्ट्रधर्म है। एक राज निष्ठा के लिए अपने आप को प्रतिज्ञा से जोड़ लेता है किन्तु दूसरा राष्ट्रहित में प्रतिज्ञा को तोड़ देता है। महाभारत के श्रीकृष्ण कर्म योगी हैं, महाभारत के श्रीकृष्ण सर्वगुण सम्पन्न व्यक्तित्व के धनी हैं। उपर्युक्त तथ्यों को पढ़कर पाठकगण सम्भवतः अनुमान लगा ही लेंगे कि पुराणों के श्रीकृष्ण और महाभारत के श्री कृष्ण इन दोनों में से कौन सा सत्य है, हमारे सामने पुराणों के श्रीकृष्ण की झांकी प्रस्तुत की जाती है। महाभारत के श्रीकृष्ण का चरित्र कहीं गुमनामी में खो गया है। इसे भारत की संस्कृति का दुर्भाग्य कहा जाए अथवा एक विडम्बना कि पुराणों के श्रीकृष्ण के बदनाम चरित्र की काली छाया हमारी संस्कृति का हिस्सा बनती जा रही है। इससे बड़ा जो दुर्भाग्य है वो यह है कि संस्कृति/सभ्यता के लिए अभिशाप सिद्ध होने वाले उसी जीवन चरित्र को हम सब पढ़ने सुनने तथा रासलीलाओं के माध्यम से देखने को मजबूर हैं। महाभारत के श्री कृष्ण यदि हमारी संस्कृति/सभ्यता का हिस्सा बनते तो भारत के लिए, भारतवासियों के लिए, भारतीय संस्कृति के लिए, भारतीय सभ्यता के लिए बड़े सौभाग्य की बात होती। लेकिन महाभारत के श्रीकृष्ण के जीवन को जनता जनार्दन तक पहुंचाने का कार्य कौन करे? इस प्रश्न का एकमात्र उत्तर यही है कि इस कार्य को आर्य समाज करे। पाठक यह न सोचें कि मैं विषयान्तर कर रहा हूँ, ऐसा नहीं क्योंकि महाभारत के श्री कृष्ण के जीवन में सत्यता है। सत्य को जानना-जनवाना, मानना और मनवाना आर्यों के कर्त्तव्यों में आता है। लेकिन मैं यहाँ महाभारत के श्रीकृष्ण की बात कर रहा था उसमें श्री कृष्ण के गुणों का वर्णन करने में महाभारतकार ने तनिक भी कोताही नहीं बरती। स्वयं दुर्योधन श्रीकृष्ण की प्रशंसा करता हुआ कहता है कि "त्वञ्च श्रेष्ठतमो लोके सतामद्य जनार्दन" अर्थात् हे जनार्दन, आप ही संसार में सज्जनों में सबसे श्रेष्ठ हैं। युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में युधिष्ठिर की दीक्षा हो चुकी, तब बारी थी, जो ऋत्विज हो, जो आचार्य हो, जो सम्बन्धी हो, जो स्नातक हो और जो राजा हो उसे अर्घ्य दिया जाये तब भीष्म पितामह द्वारा श्री कृष्ण को अर्घ्य दिये जाने का प्रस्ताव किया गया, जिसका भरी सभा में चेदिराज शिशुपाल ने न केवल पितामह के प्रस्ताव का विरोध किया अपितु युधिष्ठिर, भीष्म पितामह और श्री कृष्ण के लिए अपमानजनक शब्दों का भी प्रयोग किया लेकिन पितामह ने शिशुपाल को फटकारते हुए जिस प्रकार वासुदेव के महान् और विराट व्यक्तित्व की व्याख्या की उसे अपने पाठकों के सामने प्रस्तुत करने के लालच को मैं रोक नहीं पा रहा हूँ, भीष्म पितामह बोले-

"ज्ञानवृद्धाः मया राजन् बहव पर्युपसिताः।
तेषां कथयतां शौर्येहं गुणवतो गुणान्।।
वेदवेदाङ्गविज्ञानं बलं चाप्यधिकं तथा।
नृणां लोके हि कोऽन्योऽस्ति विशेषः केशवादृते।
दानं दाक्ष्यं श्रुतं शौर्यं ह्रीं कीतिर्बुद्धिरुत्तमा।
सन्नतिः श्रीधृतिस्तुष्टिः पुष्टिश्च नियताच्युते।

अर्थात् मैंने बहुत ज्ञानवृद्धों महात्माओं का सत्संग किया है उन सभी ने श्री कृष्ण के गुणों की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है। मैं यहाँ किसी ऐसे एक भी राजा को नहीं देख पा रहा हूँ, जिसे कृष्ण ने अपने पराक्रम से, बल से, ज्ञान से और नीति कौशल से न जीता हो। इस समस्त पृथिवी पर वेद वेदाङ्ग का ज्ञान, बल और पराक्रम

शेष पृष्ठ 13 पर

शिव जी के पौराणिक अंधभक्तों से नम्र निवेदन

[वै. रामनाथ आर्य, विजयगढ़ (अलीगढ़)]

संसार के देशभक्त लोगों ने अपने देश के महापुरुषों को अपनी पूजा का आधार बनाया है। मुसलमानों ने अपने देश के महापुरुष मोहम्मद को खुदा का पैगम्बर माना। यूरोप वालों ने ईसा को साक्षात् खुदा का बेटा मानकर उपासना की। ये सभी महापुरुष उनके देश के वासी थे। परन्तु पौराणिक हिन्दू ने अपना उपास्यदेव ऐसों को माना है जो उसके देश के तो क्या उसकी जमीन के भी निवासी नहीं रहे। इन विदेशी, शिव, गणेश, व विष्णु आदि देवताओं के भक्त सदा इसीलिये यवनों की मार खाते रहे कि इनकी कभी सर्वव्यापक जगदाधार परमेश्वर विश्वासी धर्म भक्त भोले हिन्दुओं को समझ नहीं आती हैं। शिव-गेणश आदि देवता गीता प्रैस गोरखपुर द्वारा प्रकाशित संक्षिप्त स्कन्द पुराण काशी खड पूर्वार्ध पृष्ठ 579 के अनुसार विदेशी हैं।

आज प्रकाश एवं ज्ञान विज्ञान के युग में पढ़ा लिखा हिन्दू धर्म के मामले में अंधा बनकर पोप-पुजारी एवं पंडित के पीछे चलता है। शिवलिंग के हाथ जोड़ता है। उससे मिन्नते माँगता है, उसके लिए मंदिर बनवाता है जमीन-आसमान के सारे भौतिक विज्ञान को समझने वाला वैज्ञानिक, कानून की बाल की खाल खींचने वाला वकील-ब्यौपार में भू-मण्डल भर के हिसाब की जोड़-तोड़ लगाने वाला गणितज्ञ व्यापारी, समस्त शास्त्रों को घोटकर पी जाने वाला संस्कृत का सनातनी पंडित कठिन से कठिन मसलों को तय करने की सूक्ष्म बुद्धि रखने वाला न्यायाधीश इन पत्थर पूजक पुजारियों के हाथ सारी बुद्धि बेचकर शिवजी की मूत्रेन्द्रिय के सामने सर नवाता फिरता है यह नहीं सोचता कि आखिर यह शंकर की मूत्रेन्द्रिय की नकल ही तो है इसे पूजने से क्या मिलेगा।

विद्वान् वैज्ञानिक आकाश में उड़ने को हवाई जहाज बनाता है अन्य लोकों में जाने को अन्तरिक्ष यान बना रहा है, सागर की छाती पर जहाज दौड़ाता है। संसार में वैज्ञानिक आविष्कारों के बल पर व्यापारिक व सैनिक साम्राज्य स्थापित करता है। अपने देश की जनता को समृद्ध बनाता है और मानव जाति की उन्नति का यत्न करता है पर हमारा हिन्दू समाज महादेव के पत्थर के लिंग को पानी से रगड़-रगड़ कर धोने में ही अपनी खोपड़ी खपाता रहता है। इस भोले हिन्दू को इस बात की कोई चिन्ता नहीं है कि इसके इन्हीं पाखंडों के कारण 11 करोड़, हिन्दू मुसलमान बन गये, लगभग 1 करोड़ ईसाई हो गया, 40 लाख सिख हो गया, 11 लाख जैनी हो गया लाखों अछूत कहा जाने वाला दलित वर्ग बौद्ध बन गया। नीलकंठ शास्त्री जैसे लाखों शिक्षित हिन्दू लिंग-पूजा के पाखंडों के कारण हिन्दू धर्म से घृणा होने पर विधर्मी बन गये।

पढ़ा-लिखा शिक्षित नौजवान इन्हीं गंदी बातों के कारण ईश्वर व धर्म से विमुख होकर घोर नास्तिक बनता जा रहा है। पर इस भोले हिन्दू को अपने घर-समाज-स्वास्थ्य संतान की उन्नति एवं देश की उन्नति का कोई ध्यान नहीं हैं उसका ध्यान तो हर समय शिवलिंग पर जल चढ़ाने में है। ताकि उस लिंग में से ज्वालामुखी फिर न फूट निकले जिससे सनातनी संसार में तबाही आये। बेलपत्र शिव जी के वीर्य को पुष्ट करने के लिए चढ़ाता है। अरे पागल! तुझे शिव के वीर्य से क्या करना है। पुष्ट हो या न हो। पत्थर के लिंग में ज्वालामुखी फूटने की चिन्ता हर समय रहती है, तब

ऐसे लिंगों को गहरे समुद्र-कुओं-नदी या तालाब में गहरे पानी में रखें, जिससे वह हर समय पर तर रहे और तेरी पानी चढ़ाने की मेहनत बच जाये। अपने वेश कीमती समय को प्रभु भक्ति में लगा या देश व समाज सेवा में लगा दे। देश व समाज के कल्याण के साथ तेरा जीवन भी सफल हो जावेगा। इन शिव-विष्णु के मंदिरों को गरीब बेघर वार लोगों को रहने को देदे, मंदिरों से लगी जायदादों को शिक्षण संस्थानों को देकर देश के लाखों गरीब बच्चों को उचित शिक्षा द्वारा शिक्षित नागरिक बनने में सहयोग कर। हे शिवभक्त इस सबके पुण्य से तेरा लोक परलोक सुधार देंगे।

मेरी हिन्दू कौम आँखें खोलकर देख एक खुदा के मानने वालों ने संसार में साम्राज्य स्थापित कर लिया और खुदा ने उनकी मदद की। तुझे सदियों तक गुलाम बनाये रखा। और तू सैकड़ों देवी-देवताओं के चक्कर में पड़ी पिटती रही। तू शिवलिंग को पकड़े बैठी रही और वह पत्थर-पूजन ही तेरी बरबादी का कारण हुआ। सोमनाथ जैसे लाखों विशाल मंदिर इसी शिव-लिंग पर अंधविश्वास के कारण बर्बाद हुए। सारा देश पंडे-पुजारियों के चक्कर में आकर देवताओं की मदद की आशा और विश्वास में बर्बाद हो गया। जो देवता अपनी मूर्ति की रक्षा यवनों से नहीं कर सके। मंदिरों में चोरों से अपने कपड़े-गहनों की रक्षा नहीं कर सकते। खाना-पीना हवा के लिए पुजारियों पर आश्रित हैं कुत्ते-बिल्ली अपवित्र न कर दें, तथा चोर चुरा नहीं ले जाय इसलिये हर समय पुजारी तालों में बंद रखते हैं। ये भी कोई देवता है, तुम्हें क्या देंगे, विचार करो, मनुष्य हो। तुम्हें प्रभु ने हर काम सोचसमझकर करने के लिए बुद्धि दी है। मनुष्य का अर्थ ही मननशील होता है। अतः बुद्धि से काम लिया करो। मनुष्य जन्म-बार-बार नहीं मिलता है और इसे अंधविश्वासों में बर्बाद कर देना बुद्धिमानी की बात नहीं है।

❑❑

पृष्ठ 11 का शेष

इनके समान किसी और में नहीं है। इनकी दानशीलता, इनका कौशल, इनकी शिक्षा और ज्ञान इनकी शक्ति, इनकी शालीनता, इनकी नम्रता, धैर्य और सन्तोष अतुलनीय है। श्रीकृष्ण ऋत्विज हैं, श्रीकृष्ण गुरु हैं। श्रीकृष्ण योग्य सम्बन्धी होने के साथ-साथ ये स्नातक और लोकप्रिय राजा हैं। नीति कौशल की एक और झलक पाठक देखें। श्रीकृष्ण, अर्जुन और भीम जब जरासन्ध के यहाँ दरवाजे से न होकर दीवार फांदकर दाखिल हुए। जरासन्ध के पूछने पर श्रीकृष्ण ने कहा कि अद्वारेण रिपोर्गेहं द्वारे सुहृदो गृहान्। अर्थात्- दरवाजे से तो मित्र के यहाँ दाखिल हुआ जाता है, दुश्मन के यहाँ तो बिना द्वार के ही प्रवेश करना होता है। महाभारत के श्रीकृष्ण के विषय में स्वामी दयानन्द सरस्वती जी का क्या मन्तव्य है, वो भी मैं अपने पाठकों को बताना चाहता हूँ। ऋषिवर लिखते हैं कि "देखो! श्रीकृष्ण का इतिहास महाभारत में अत्युत्तम है। उनका गुण, कर्म, स्वभाव और चरित्र आप्त पुरुषों के सदृश है। जिसमें कोई अधर्म का आचरण श्रीकृष्ण जी ने जन्म से मरण पर्यन्त बुरा काम कुछ भी किया हो ऐसा नहीं लिखा, और इस भागवत वाले ने अनुचित मनमाने दोष लगाये हैं।" जितना जमीन आसमान में, रात-दिन में, विद्या-अविद्या में, सत्य-असत्य में अन्तर है उतना ही पुराणों के और महाभारत के श्रीकृष्ण के जीवन में और चरित्र में अन्तर है।

आज समय की मांग और आवश्यकता है कि हम योगीराज श्री कृष्ण के वास्तविक स्वरूप को पहचानें और उनके आदर्शों को अपने जीवन में धारण करें।

❑❑

संसद की दीवारों के संदेश

(प्रो. उमाकान्त उपाध्याय)

भारत के प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी ने पहली बार संसद में प्रवेश करते समय संसद की सीढ़ियों पर सिर रखकर प्रणाम किया है। इससे संसद की गरिमा बहुत बढ़ गयी है। आशा है कि सांसद महानुभाव इस भावना और गरिमा का सम्मान करेंगे।

संसद भवन की दीवारों और लिफ्टों के गुम्बजों पर लिखे हुये संदेश संसद के सदस्यों, सांसदों से कुछ उम्मीद करते हैं संसद के इन संदेशों का चयन करने वाले पूर्व राजनयिकों के प्रति मन में श्रद्धा के भाव जग उठते हैं। आज के बहुसंख्यक सांसदों के पतनशील आचरण, स्वार्थी व्यवहारों पर विचार करने से इन आदर्श संदेशों का महत्व बहुत बढ़ जाता है। संसद भवन के प्रथम द्वार से होकर जब हम केन्द्रीय सभागार के प्रांगण की ओर चलते हैं तो प्रवेश द्वार पर भारतीय संस्कृति का एक उदात्त आदर्श निम्न श्लोक में लिखा हुआ मिलता है-

"अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्।।" (पंचतंत्रम्)

इसका अर्थ हुआ कि यह अपना है और यह पराया है ऐसा विचार छोटे चित्त वालों का होता है। जो उदार चरित्रवाले होते हैं, वे तो सारे विश्व को अपना परिवार समझते हैं। आज के भूमण्डलीकरण और विश्व के बाजारीकरण और बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के विश्व के संसाधनों की लूट के युग में ऐसे आदर्शों का महत्व बढ़ जाता है।

लोकसभा सुविशाल सभागार में लोकसभा के अध्यक्ष के पीठ के पीछे दीवार पर बौद्ध युग की प्रसिद्ध सुक्ति - **"धर्मचक्र-प्रवर्तनाय"** लिखा हुआ हैं इसका अर्थ हुआ कि सांसदों को धर्म चक्र के निर्माण के लिये प्रयत्नशील बने रहना चाहिये। इस सूक्ति को देखते हुए हम संसद के सदस्यों को पंथनिरपेक्ष होने की सलाह तो सोच सकते हैं। इससे यह सुस्पष्ट है कि हमारे संसद का आदर्श धर्मनिरपेक्ष नहीं है, बल्कि सम्प्रदाय निरपेक्ष है। संसार में अनेकों पंथ हैं- शैव, शाक्त, वैष्णव आदि हिन्दुओं के सम्प्रदाय हैं, शिया, सुन्नी आदि मुसलमानों के सम्प्रदाय हैं, कैथोलिक, प्रोटेस्टेंट आदि ईसाईयों के सम्प्रदाय हैं, जैन, बौद्ध, पारसी, सिक्ख सभी सम्प्रदायों में ही परिगणित हैं। इनके प्रति संसद का निरपेक्ष समान भाव होना ही इष्ट है।

धर्म तो मानव समाज को, बल्कि सम्पूर्ण विश्व को धारण पालन करता है **"धारणाद् धर्ममित्याहुः"** कहा गया है। जिस आचरण से सम्पूर्ण विश्व मनुष्य पशु, पक्षी, प्राकृतिक संसाधन सभी का धारण, पोषण हो वह धर्म कहलाता है। मनु महाराज ने कहा है -

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयम् शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणं।।

इसी के साथ अहिंसा और जोड़ देने से धर्म के ग्यारह लक्षण हो जाते हैं। राज्यसभा में एक प्रवेश द्वार पर धर्म की व्याख्या लिखी हुयी है। **अहिंसा परमो ध र्मः।** राष्ट्रपिता गाँधीजी की सभाओं में गाया जाता था- वैष्णव जन तो तेने कहिये जे पीर पराई जाने रे। आज के युग में हमारी संसद में जोर जबर्दस्ती से अपनी बात मनवाने का प्रयास होता है।

संसद की दीवारों पर जहाँ भी भारत का राजचिन्ह अंकित है, वहाँ सर्वत्र लिखा हुआ है- **"सत्यमेव जयंते"** इसका भाव हुआ कि सांसदों का कर्त्तव्य है कि वे सत्य की जीत की चेष्टा करें। यह पूरा वाक्य है- **"सत्यमेव जयते नानृतम्"**, ऋत् का अर्थ होता है उचित अनृत का अर्थ होता है अनुचित। भाव यह हुआ कि जो सत्य

अनृत है, अनुचित है उसकी जीत की चेष्टा नहीं होनी चाहिये। उदाहरण के लिये स्कैण्डल होते हैं। घूस का बाज़ार सर्वत्र गर्म रहता है, चोरी, भ्रष्टाचार होते हैं इसलिये उनकी सत्ता तो है पर वे अनुचित हैं। सांसदों का कर्त्तव्य है कि वे अनुचित का समर्थन न करें। आज के युग में हमारे संसद में उचित-अनुचित का विचार किये बिना पार्टी और नेताओं के समर्थन में बहुत कुछ होता रहता है। कुछ दिनों पहले राष्ट्रमण्डल के खेलों का स्कैण्डल, 2जी का मामला, कोलगेट का स्कैण्डल, सभी सत्य की निर्मम हत्या है। **सत्यमेव जयते** का संदेश इस तरह के आचरण को रोकता है।

राज्यसभा के एक प्रवेश द्वार पर लिखा हुआ है- **सत्यं वद् धर्मं चर।** यह तैत्रीय उपनिषद् का वचन है। इसका सुस्पष्ट संदेश है कि संसद के सदस्य सत्य बोलें और धर्म का आचरण करें। हम यह देख रहे हैं कि धर्म के आचरण की अनुशंसा अनेक बार की गयी है। राज्यसभा के एक और प्रवेश द्वार पर लिखा हुआ है- **"एकं सत् विप्रा बहुधा वदन्ति"** (ऋग. 1/164/46)। ऋग्वेद में तो यह उक्ति परमेश्वर के सम्बन्ध में है किन्तु यहाँ संसद में इस उल्लेख का आशय यह समझ में आता है कि देशहित, देश की सुरक्षा, देश का बहुमुख विकास सभी सदस्यों का सांझा सत्य है और सभी सदस्य मिलजुल कर आपसी समन्वय से इस सत्य को पाने का प्रयास करें। एक और प्रवेश द्वार पर भगवत् गीता का निम्न वाक्य लिखा है- **"स्वे-स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः"** (गीता-18, 45) संसद का प्रत्येक सदस्य अपने-अपने कर्म का, कर्तव्यों का पालन करते हुए संसद के उद्देश्य की पूर्ति कर सकता है। आज हमारे बहुदलीय प्रजातन्त्र में राजनीतिक दल स्वदेश के स्वार्थ को भुलाकर दलीय स्वार्थों में उलझ जाते हैं। कई बार तो सदस्यों के आपसी नोक-झोंक में लड़ाई हो जाती है। संसद के ये वाक्य दलीय स्वार्थों से ऊपर उठकर राष्ट्रीय स्वार्थ की अनुशंसा कर रहे हैं।

संसद की प्रथम लिफ्ट के गुम्बद पर महाभारत का निम्न श्लोक अंकित है-

"न सा सभा यत्र न सन्ति वृद्धाः,
वृद्धा न ते ये न वदन्ति धर्मम्।
धर्मो न सो यत्र न सत्यमस्ति,
सत्यम् न तत् यत् छलमभ्युपैति।।" (महाभारत)

अर्थात् वह सभा या संसद, संसद नहीं होती, जिसमें वृद्ध, वरिष्ठ ज्ञानवृद्ध, अनुभववृद्ध अर्थात् ज्ञानी और अनुभवी लोग न हों। वे वरिष्ठ वृद्ध जन भी नहीं है जिनके वक्तव्य राष्ट्रधर्म और राष्ट्रहित में न हो, राष्ट्र धर्म भी ऐसा हो जिसे सत्य की रक्षा होती हो और सत्य भी ऐसा हो जिसमें छल-कपट भरा न हो। इस संदेश का आशय यह है कि हमारे राष्ट्र धर्म, हमारी राजनीति जितना पारदर्शी हो, हमारे राष्ट्र धर्म में जितना छल-कपट कम होगा, उतना ही हमारे राष्ट्र और हमारी संसद की गरिमा बढ़ेगी।

लिफ्ट क्रमांक दो के गुम्बद् पर मनुस्मृति का निम्न श्लोक लिखा हुआ है -

"सभा वा न प्रवेष्टव्या, वक्तव्यम् वा समंज्जसम्।
अब्रुवन्, विब्रुवन् वापि नरो भवति किल्मिषी।।"
(मनु. 8/13)

यह आदेश सभासदों को उनके आचरण की गरिमा के प्रति सतर्क करता है। इस श्लोक का भावार्थ यह है कि सभासद सभा में प्रवेश न करें, यह तो उनकी इच्छा पर है (हम यह समझते हैं कि जब कोई संसद का सदस्य बन जाता है तो वह संसद में प्रवेश कर चुका, उसे अनुपस्थित होने का अधिकार नहीं है) सभासद जब संसद के सदस्य बन चुके तो उन्हें राष्ट्रधर्म के अनुकूल ही बोलना चाहिये। जो सदस्य संसद में बोलेगा ही नहीं या झूठ बोलेगा वह पाप करेगा। हम पिछली लोकसभा के राष्ट्रमण्डलीय खेलों, 2जी के घोटाले और कोलगेट के घोटाले के प्रसंग में देख चुके हैं कि पिछली

शेष पृष्ठ 27 पर

एक पत्र आबु धाबी (U.A.E.) से

समादरणीय श्री युत ....

सादर नमस्ते।

- ईश्वरकृपयात्र कुशलं तत्रापि भवतु।

- अनेक आर्य सज्जनों के आमंत्रण पर जून 19, 14 को यहाँ पहुँचा, खाड़ी देशों की यह मेरी दूसरी यात्रा है। यहाँ मैं आर्य परिवारों को सांख्य दर्शन का अध्यापन, ध्यान, प्रवचन, शंका समाधान करता हूँ। जब भी अवकाश मिलता है, आस-पास के देशों में भ्रमणार्थ जाता हूँ। दुबई देश में रहते हुए मैंने अबुधाबी, शारजाह अजमान फुजैराह, रस् अल् खैमाह आदि सात देशों की यात्रा की है। मुझे बहुत कुछ नया ज्ञान, विज्ञान, प्रत्यक्ष देखने, सुनने, पढ़ने को मिला। यह मेरी 19वीं विदेश प्रचार यात्रा है।

- बीसवीं शताब्दी के मध्य तक इन खाड़ी देशों में, खारे समुद्र, रेत के टीलों, गर्म धूल भरी हवाओं के सिवाय कुछ भी नहीं था। अत्यन्त प्रतिकूल प्राकृतिक विपन्न जलवायु के ये केसे जीते थे, यह कल्पना भी नहीं की जा सकती है। लेकिन आज वहीं पर अत्याधुनिक तथा विशाल, 50-80-100 मंजिले आकर्षक भवनों को देखते हैं तो बड़ा आश्चर्य होता है, मन में विचार होता है कि कहीं स्वप्न तो नहीं देख रहे हैं, कोई जादू तो नहीं है!!! वास्तविकता यह है कि यह सब; मन में किसी उद्देश्य को बनाकर उसको पूरा करने हेतु प्रबल भावना, दृढ़ संकल्प, परम पुरुषार्थ तथा घोर तपस्या का परिणाम है।

- मैंने सुना कि यहाँ के (शेख) राजा, जब अमेरिका, यूरोप आदि देशों की यात्रा करते हुए वहाँ की भौतिक सुख सुविधाओं से युक्त, सब प्रकार की उन्नति देखते थे तो उनके मन में यह विचार उत्पन्न होते थे कि क्या मेरे देश में ऐसे भवन, चौड़ी सड़कें, यातायात के साधन, होटल, रिसोर्ट, क्लब, बाग, बगीचे, मनोरंजन के साधन, व्यापार मण्डी, सुख-सुविधाएं बनायी जा सकती हैं, जिनके कारण लोग आकर्षित होकर आएँ, रहें?

- बस एक दिन संकल्प कर लिया, योजनायें बनायी गई, अमेरिका, यूरोप, एशिया के देशों से सम्पर्क किया, मंत्रणा हुई, अनुबन्ध हुए, लोहा, सीमेंट, पत्थर, लकड़ी, इंजीनियर, श्रमिक आदि जिन-जिन साधनों की अपेक्षा थी, प्राप्त किये गये। कार्य प्रारंभ हो गया, शेख के मन में एक ही भावना कि कोई निर्माण हो, अद्‌भुत, अद्वितीय आकर्षक होना चाहिए। समुद्र में मीलों तक पत्थर, कंकर, रेत डालकर, पहाड़ बनाकर उन पर आकाश को छूने वाली, ऊँची भव्य इमारते बनायी गयीं। और सुन्दर नगर बसाया गया। दूसरी तरफ गहरी खाइयां खोदकर समुद्र के पानी को नहरों के रूप में फैला दिया गया अन्य देशों से जहाजों में उपजाऊ मिट्टी मंगाकर, रेत के मैदानों में बिछाकर, बड़े-बड़े, उद्यान, खेत, बगीचे, उपवन, वाटिकाएँ बना दीं। जहाँ घास का एक तिनका नहीं उगता था, वहाँ पर रंग-बिरंगे, फूल, फल घास के मैदान बना दिये। बसों, रेलों, ट्रामों भण्डारों आदि की समुचित व्यवस्था करके सर्वत्र आवागमन को सरल बना दिया।

- कृत्रिम रूप से बने सभी साधन सुविधाओं से युक्त उत्तम व्यवस्था, कुशल प्रबन्ध, अनुशासन, दण्ड-व्यवस्था के कारण विश्व के 100 से भी अधिक देशों के नागरिक यहाँ अनेक प्रकार के व्यवसायों में लगे हुए हैं अमीरात के देश विश्व का एक महत्त्व पूर्ण व्यापारिक एवं पर्यटन का केंद्र बन गया है। इन देशों के मुख्य नगरों में घूमते हैं तो यह भ्रम हो जाता है कि कहीं हम लंदन पेरिस, टोक्यों, सिंगापुर में तो नहीं हैं?

- इन देशों के वैभव, सम्पदा, विकास, उन्नति को देखकर वही प्रश्न मन में उपस्थित होता है कि ये देश अत्यन्त प्रतिकूल वातावरण, जलवायु तथा विपन्नता के होते हुए, कुछ ही वर्षों में देश को स्वर्ग के समान सम्पन्न सुन्दर बना सकते हैं तो हम क्यों नहीं? जहाँ पर हर प्रकार की प्राकृतिक सम्पदा, साधन, अनुकूलता हो। जिस देश में शिल्प, कला, शिक्षा चिकित्सा, विज्ञान, संस्कृति, सभ्यता, खान-पान, वेशभूषा, धर्म, आचार, विचार; व्यवहार, सिद्धान्त तथा श्रेष्ठ गौरवमयी आदर्श परम्पराएँ हजारों-लाखों वर्षों से चली आ रही है, वह उन्नत क्यों नहीं हो

शेष पृष्ठ 23 पर

हिन्दू जाति पर आर्यसमाज के उपकार
(श्री डॉ० बालकृष्ण एम०ए० पी०एच०डी०)

आर्यसमाज सनातन वैदिक धर्म को मानने वाला है। इस समय के सब प्रचलित धर्मों की अच्छी बातों को यदि ले लिया जाय तो उन सब का समावेश वैदिक धर्म में हो जायेगा। आर्य समाज के प्रवर्तक महर्षि दयानन्द सरस्वती स्वयं लिखते हैं कि "वेदोक्त सब बातें विद्या से अविरुद्ध हैं।" आर्य समाज का तीसरा नियम भी इसी बात की पुष्टि करता है कि "वेद सब विद्याओं का पुस्तक हैं।" परन्तु आज हमें उसके अधिक विश्वव्यापी रूप को नहीं विचारना है। आर्य समाज ने हिन्दू जाति के लिये क्या किया है और क्या करना चाहता है? इसका दिग्दर्शनमात्र इस लेख में करना चाहते हैं।

आर्यसमाज से पूर्व हिन्दू जाति की दशा-

महर्षि के आगमन से पूर्व हिन्दू जाति जिस दुर्दशा में पड़ी हुई थी, वह किसी से छिपी नहीं है। वह काल हिन्दू जाति के ह्रास का था। उसे मुसलमान और ईसाई रूपी दो मगर क्रमशः निगल रहे थे। हिन्दुओं की संख्या उत्तरोत्तर कम होती हुई चली जा रही थी। हिन्दू लोग स्वयं अज्ञानान्धकार में पड़े हुये थे। अपनी जाति का गौरव, आत्माभिमान सब कुछ नष्ट हो चुका था। विधर्मी लोग हमारे पूर्वजों की हंसी और मजाक किया करते थे, और हम लोग भी मानसिक दासता के कारण उनकी हां में हां भरने लग गये थे। यह अवस्था कितनी शोचनीय और खतरनाक थी इसकी कल्पना करते ही दिल कांप उठता है। ऐसी अवस्था में महर्षि रूपी सूर्य उदय हुआ। जिसने अपने आर्य समाज रूपी प्रखर तेज से हिन्दू जाति के मानसिक दासता रूपी अन्धकार को दूर करके आत्मगौरव और आत्माभिमान रूपी प्रकाश दिया और सोते हुओं को जगाया। आत्मरक्षा के सघन ज्ञान रूपी शस्त्र को उनके हाथ में दिया। हिन्दू जाति के प्रति महर्षि का यह महान दान है, जिससे वह कभी उऋण नहीं हो सकती। महर्षि के बाद आर्य समाज ने इस काम को लिया और विधर्मियों की बाढ़ को अपने तर्क रूपी बाँध से रोक दिया। इससे हिन्दू जाति का वह गौरवमय विशाल प्रासाद जिसने किसी समय आधे भू मण्डल को अपने में आश्रय दिया था, गिरते-गिरते बच गया। यद्यपि इसकी नीव अन्दर के दोषों से खोखली हो चुकी थी, लेकिन उसके सुधारने वाला कारीगर समय पर आ गया और उसकी रक्षा की।

वैदिक सत्य धर्म-

आर्यसमाज ने यह सिद्ध करके दिखला दिया कि वेदों के प्रति लोगों की प्रवृत्ति न रहने के कारण ही लोक में अन्धकार छा गया। इससे मनुष्यों की बुद्धि भ्रमयुक्त हो गयी, और मनमाने मत चलने लगे। यह सब वेद विरुद्ध धर्म अमान्य है। लोगों के मनों पर आर्यसमाज ने बिठा दिया कि वैदिक धर्म ही सर्वश्रेष्ठ और सनातन है। यदि कोई व्यक्ति धन के लोभ में आकर मुसलमान व ईसाई होना चाहे तो उसका कोई इलाज नहीं। सत्यधर्म का प्रेमी और श्रद्धालु वैदिक -धर्म को छोड़ कर और कहीं नहीं जा सकता। आर्यसमाज ने इस हिन्दू जाति की रक्षा के इस कार्य को भारतवर्ष तक ही सीमित नहीं रखा अपितु उसने देश विदेश में हिन्दुओं को विधर्मियों के फन्दे में फँसने से बचाया। उसने अफ्रीका फिजी, ब्रिटिश-गायना के हिन्दुओं को बचाने के लिये भी यत्न किया है। आर्यसमाज, अभी तक यह कार्य कर रहा है। वह पुण्य दिन परम सौभाग्य का होगा जब सर्वत्र वैदिकधर्म की अमृत वर्षा से भूलोकवासी स्नान कर रहे होंगे।

धर्म का अशुद्ध अर्थ-

आर्यसमाज के स्थापन से पूर्व हिन्दू जाति वास्तविक धर्म को भूलकर बाह्य रीतिरिवाज और व्यवहार को ही धर्म समझ रही थी। धर्म के मूल सिद्धान्त और विश्वास को उसने ताक में रख दिया था। अवस्था यहाँ तक बढ़ गयी कि यदि किसी मुसलमान व ईसाई ने अपने हाथ का पानी रोटी व माँस का टुकड़ा कुएं में डाल दिया तो वह कुआं अपवित्र समझा जाने लगा। यदि कोई अनजान व्यक्ति उसका पानी व्यवहार में लाता था तो वह धर्म तथा जातिभ्रष्ट कर दिया जाता था। यदि कोई मुसलमान किसी का यज्ञोपवीत व चोटी काट देता था तो इसके फलस्वरूप इच्छा न रहते हुए भी उसे अपनी जाति से बहिष्कृत कर दिया जाता था। उसके साथ मेल जोल और व्यवहार करने वाले को भी वही दण्ड दिया जाने लगा। सारांश यह कि धर्म की मूल बातों, सदाचरण विश्वास श्रद्धा आदि को छोड़ बाहर के ढकोसलों को महत्त्व दिया जाने लगा। भूल से मुसलमान के हाथ का पानी पीने वाले सदाचारी व्यक्ति की अपेक्षा धर्म का ढोंगी नीच दुराचारी व्यक्ति, श्रेष्ठ और सच्चा हिन्दू समझा गया। हिन्दू समाज को यह एक प्रकार का अपचन का रोग हो गया। वे लोग अपने ही सजातियों को विधर्मी कह कर बाहर निकालने लगे। इससे विधर्मी लाभ उठाने लगे। वे जान बूझ कर इस प्रकार की कुचेष्टा करके अपनी जाति की संख्या बढ़ाने लगे। न जाने कितने हिन्दू भाई और बहनें जाति से च्युति की जाकर दूसरे धर्मों में चली गई। आर्यसमाज ने हिन्दुओं के इस ह्रासक्रम को रोका। धर्म के इन थोथे और सारहीन सिद्धान्तों को दूर हटा कर धर्म का वास्तविक स्वरूप जनता के सम्मुख उपस्थित किया। जनेऊ और चोटी के कट जाने से कोई धर्मभ्रष्ट नहीं होता। ये तो धर्म के केवल बाह्य चिन्ह है। धर्म मनुष्य के जीवन और आत्मा पर असर डालने वाला है। आजकल हजारों शिक्षित नवयुवक युवावस्था की उमंग में आकर जनेऊ और चोटी कटवा देते हैं। परन्तु इतने से भी वे विधर्मी नहीं समझे जा सकते। ये हिन्दू धर्म के कट्टर पक्षपाती होते हैं।

धर्म पुस्तक का अभाव

वैदिक धर्म के पुनरुद्धार से पूर्व हिन्दू धर्म डावाँडोल हो रहा था। बिना स्तम्भ के खड़ा था। विरोधियों का मुकाबिला करने के लिये उसके पास कोई उपयुक्त साधन न थे। हिन्दुओं की अपनी कोई धर्म पुस्तक न थी। हिन्दू लोग अपनी मूल पुस्तक वेद को भूल चुके थे अवस्था यहाँ तक पहुँच चुकी थी कि वेदों का भारतवर्ष में मिलना असंभव हो गया। मैक्समूलर ने जर्मनी से वेदों को लेकर छापा। महर्षि को भी स्वयं वेदों को प्राप्त करने में बहुत दिक्कतें हुई। हिन्दू लोग वेदों के नाम तक न जानते थे। वे पुराण और गीता को ही अपनी धर्म पुस्तक मानते थे। वेदों के विषय में साधारण लोगों की यह धारणा थी कि वेद कोई उच्च पुस्तक है, जो कि सतयुग के लिए थी, कलियुग के लिए नहीं। परन्तु महर्षि ने इस भ्रममूलक धारणा को मिटाया। उन्होंने कहा कि जिस प्रकार ईश्वर का बनाया हुआ सूर्य सब युगों में और त्रिकाल में समान रूप से चमकता हुआ प्रकाश देता है उसी प्रकार वेद भी सब युगों और सब कालों के लिए एक ही हैं। वेद अपौरुषेय और आदि पुस्तक हैं। यह सब धर्मों का मूल स्रोत और ज्ञान का भण्डार है। मनुष्य मात्र का कल्याण वेद-विद्या के प्रचार से ही हो सकता है। यही कारण है कि आर्यसमाज अपने प्रत्येक कार्य में वेदों को आगे रखता है।

महर्षि की वेदभाष्य शैली

महर्षि की अपार दया से वेद तो मिले परन्तु उनके नाम कथन व दर्शन मात्र से ही काम न चल सकता था। उनका अनुवाद और भाष्य करना आवश्यक था। इसलिए स्वामी जी ने वेदभाष्य की ओर ध्यान दिया। वेद भाष्य की जो शैली उन्होंने प्रदर्शित की वह विद्वानों के लिए विचारणीय तथा अनुकरणीय है। उनकी शैली प्राचीन ऋषियों की विचारसरणि पर चलती है। स्वामी

जी की इस नवीन वेदभाष्य की पद्धति को अनेक विद्वानों ने स्वीकार किया। श्री अरविन्द घोष, सत्यव्रत सामाश्रमी, मि. पावगी और बंगाल के कई विद्वानों ने इसका स्वागत किया है।

विश्व को आर्य बनाओ

हिन्दू जाति ने अपने आपको कूप मण्डूक बनाया हुआ था। उस समय हिन्दुओं का यह आम विश्वास था कि सिन्ध के पार जाने व समुद्र यात्रा करने से मनुष्य अपने धर्म से च्युत हो जाता है। स्वामी जी ने इसके विरुद्ध भी आवाज उठायी और लोगों को बताया कि प्राचीन आर्य सिन्ध नदी ही नहीं अपितु समुद्र के पार जाकर व्यापार करते थे। उन लोगों ने विदेशों में जाकर आर्य धर्म का प्रचार किया और भारतीय संस्कृति तथा सभ्यता का पाठ पढ़ाया। उन्होंने विदेश में जाकर अपने उपनिवेश स्थापित किये और विदेशियों से विवाह सम्बन्ध ा भी जोड़ा। इसलिये अब भी लोगों को व्यापार और धर्म प्रचार के लिये देश विदेश में जाना चाहिए। महर्षि ने हिन्दू जाति के सम्मुख ऊँचा ध्येय रक्खा और "कृण्वन्तो विश्वमार्यम्" का सन्देश दिया।

वर्णव्यवस्था

हिन्दू जाति निरक्षर भट्टाचार्यों के जाल में फँसी हुई थी। स्वामी दयानन्द ने ब्राह्मणों की कल्पित जन्म मूलक वर्णव्यवस्था को हटा कर युक्तियुक्त गुण कर्मानुसार वर्णव्यवस्था को स्थापित किया। ब्राह्मण विद्याभ्यास, विद्या दान, तपश्चर्या और भिक्षा वृत्ति करता हुआ ही अपना ब्राह्मणत्व कायम रख सकता है न कि केवल ब्राह्मण के घर में जन्म लेने से। इस प्रकार समता और भ्रातृभाव के उच्च सिद्धान्तों को हिन्दू जाति के सम्मुख रखा।

गुरुडम पर प्रहार

महर्षि दयानन्द के आगमन से पूर्व गुरुडम बहुत जोरों पर था। स्वामी जी ने इस अभेद्य किले पर आक्रमण करके उसे तोड़ गिराया। यह साधु, महन्त और मठाध ीश अन्धविश्वासी भक्त जनता को लूट रहे थे। स्वामी जी ने इसके विरुद्ध आवाज उठाकर भोली-भाली जनता को उनके जाल से छुड़ाया। उन्होंने सच्चे वानप्रस्थी और संन्यासी का आदर्श बताया। स्वामी जी ने स्वंय भी किसी स्थान पर मठ स्थापित नहीं किया, और न वे किसी समाज के प्रधान ही बने। वे सच्ची भिक्षावृत्ति से जाति की सेवा करते रहे।

एकेश्वरवाद का उपदेश-

हिन्दू जनता एकेश्वर की पूजा को छोड़ कर करोड़ों देवी-देवताओं, की पूजा में लगी हुई थी। स्वामीजी ने इसका खण्डन करके एकेश्वर की पूजा का आदेश दिया। स्थान-स्थान पर शास्त्रार्थ करके लोगों को मूर्त्तियों को त्याग करने के लिए उद्यत किया। इसी प्रकार मृत-श्राद्ध की प्रथा पर आघात करके सच्चे युक्ति-युक्त धर्म का उपदेश दिया।

अछूतोद्धार

आज कल महात्मा जी अछूतोद्धार करने में जी जान से लगे हुए हैं। उनके इस आन्दोलन से हिन्दू समाज में जागृति उत्पन्न हुई है। परन्तु अस्पृश्यता निवारण और दलितोद्धार विषयक कार्य प्रारम्भ सें ही आर्य समाज के प्रचार कार्य का आवश्यक अंग रहा है। इस कथन में कोई अत्युक्ति नहीं कि ऋषि दयानन्द ही इस आन्दोलन के वर्तमान युग में प्रथम प्रवर्तक थे। उन्होंने बतलाया कि केवल चार ही वर्ण हैं इनमें शूद्र भी अछूत नहीं। वैदिक सिद्धान्तों के अनुसार अस्पृश्य कोई भी नहीं है। इस प्रकार आर्यसमाज ने आरम्भ से ही अछूतोद्धार का प्रशंसनीय कार्य किया है।

स्त्री जाति का उद्धार

(1) कोई समय था, जब भारत में विदुषी स्त्रियाँ भी पुरुषों के समान आदर पाती थीं। परन्तु हिन्दू जाति के पतन काल में स्त्रियों को शिक्षा देना पाप समझा गया। (2) बाल विवाह ने हिन्दू सन्तानों को बल और शक्तिहीन बना डाला था। (3) हिन्दूओं में विधवाओं का विवाह कुल के नाश का कारण समझा जाता था। इससे समाज का वातावरण दूषित होने लगा। इस दुरवस्था को देख कर महर्षि को अत्यन्त दुःख हुआ। उन्होंने

स्त्रियों को शिक्षा देने तथा बाल विवाह को रोकने के लिए बलपूर्वक यत्न किया। (4) महर्षि ने पर्दे की विनाशकारी कुप्रथा पर आघात करते हुए स्त्रियों के साथ किये जा रहे अन्याय को रोका। पश्चिम की जो लहर स्त्रियों को स्वतन्त्रता और समानता देने के लिए चली है, उस के भारतवर्ष में आरम्भ होने से पूर्व ही दयानन्द ने वेदों के आधार पर स्त्रियों को उच्च शिक्षा देने और पर्दे को हटाने का आदेश दिया। स्त्री जाति के उद्धार के लिए वैदिक विवाह पद्धति का प्रतिपादन किया और बताया कि युवावस्था में स्वयंवर की रीति से विवाह होना चाहिए। इस ओर स्वामी दयानन्द और आर्यसमाज द्वारा किया हुआ कार्य प्रशंसनीय है।

पश्चिम से पूर्व की ओर

1800 के लगभग भारतवासी पाश्चात्य सभ्यता के बहुत दिल-दादा हो गये थे। स्कूलों और कालेजों के नवयुवक विद्यार्थी उनकी साइंस और फिलोसफी को पढ़कर उनके हामी हो गये थे, वे अपने देश की सभ्यता और संस्कृति को घृणा की दृष्टि से देखने लगे थे। इस आत्मघातक मानसिक दासता से आर्य समाज ने उनका उद्धार किया है। और बताया कि भारतवर्ष समस्त आर्य संसार का धर्मगुरु है। इसी ने बहुत देशों को संस्कृति का पाठ पढ़ाया है। आज पराधीनता के कारण हमारी यह दुर्गति हुई है। यूरोप विज्ञान और कला में प्रगति कर रहा है लेकिन यह अभी कल का बच्चा है उसने वृद्ध पितामह भारत से ही तो मूलतत्व सीखा है। इसलिये हमें लज्जित होने की कोई जरूरत नहीं। हमें अपना सिर गौरव से ऊँचा उठाए रखना चाहिये। हमें अपने प्राचीन साहित्य और कला आदि को पुनरुज्जीवित करना चाहिये यह आत्माभिमान, और आत्मविश्वास का पाठ सर्वप्रथम आर्य समाज ने ही हिन्दू सन्तानों को पढ़ाया है।

ऋषि ने जातीयता राष्ट्रीयता, और स्वराज्य की इच्छा का भाव हमारे दिलों में जाग्रत किया है।

सारांश यह कि मानसिक, शारीरिक, और सामाजिक रोग हिन्दू समाज में सैकड़ों वर्षों से घर कर चुके हैं। उन्हें दूर करने का यत्न आर्यसमाज ने किया। लोगों का ध्यान सत्यधर्म की तरफ खींचा, मानसिक दासता से पीड़ित नवयुवकों का ध्यान पश्चिम से हटाकर पूर्व की ओर और वर्तमान से हटाकर भूत की ओर किया। उनमें आत्मविश्वास, देशप्रेम और प्राचीन आर्यसंस्कृति के गौरव के भाव भरे। पराजित होने के स्थान पर विजेता होने का मूल मंत्र पढ़ाया। दूसरों से निगले जाने की बजाय उन्हें अपने अन्दर निगलने का सूत्र बतलाया। यह अनुपम कार्य महर्षि दयानन्द और आर्य समाज ने ही किया है। कोई भी हिन्दू ऋषि के इस कार्य की उपेक्षा नहीं कर सकता, और न आर्यसमाज को निरादर की दृष्टि से देख सकता है। हम आशा करते हैं कि प्रत्येक हिन्दू ऐसे प्रगतिशील समाज का अंग बनकर उसकी रक्षा करेगा और आत्मिक उन्नति का मूलमंत्र सीखेगा।

□□

पृष्ठ 9 का शेष

द्वितीय जन्म होता था, जब वह पूर्ण शिक्षित उत्पन्न होता था।

इतने घनिष्ठ सम्बन्ध की तो आजकल कल्पना भी करना कठिन है! कोई शिक्षक कोर्स ही पूरी तरह पढ़ा दे, तो वो ही बहुत है...

इन सब उद्धरणों से हम देख सकते हैं कि भारतवर्ष में विद्या को कैसी उच्च श्रेणी में रखा जाता था, और उसके आदान-प्रदान के लिए कितने सुन्दर नियम हुआ करते थे। यह सभी शाश्वत नियम हैं। इनकी आज़ भी उतनी ही आवश्यकता है, जितनी कल थी और भविष्य में भी बनी रहेगी। इनको त्याग देने के कारण ही शिक्षण-व्यवस्था में विष घुल गया है। इसको बदलना हम सभी का कर्तव्य है।

□□

वेदों की वरीयता पर प्रश्न चिन्ह मत लगाओ! मत लगाओ!

(दार्शनेय लोकेश)

<"Firstly, the entire hymn 5.40 is envisioned by Atri Bhaum who very scientifucally says that Sun (सूर्य) was covered (गूळह) by unorderly darkness (तमस अपव्रते) and Rishi Atri with the help of instrument of Tureeya (तुरीयेण) attained to (अविंद) the Sun...">

<A) Twenty Seven (27) Nakshatras - 1. Yajurveda 9.7, (?) 2. Taitireeya Samhita 4.4.10, 3. Vedang Rik Jyotish (25 and 26)>

पिछले कुछ दिनों से हिन्दू कैलेण्डर ग्रुप में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष जुड़े अंग्रेजीदां लोगों से कुछ ऐसी 'Mails" दिखने लगी हैं कि मन सन्तापित हो उठता है। ये दो अंश ऐसी ही Mails से हैं। लगता है एक से एक मैक्समूलर पैदा होने लगे हैं।

ऋग्वेद के 5/40/6 मन्त्र के उद्धरण से अत्रि ऋषि द्वारा दूरवीन के द्वारा अविंद नामक सूर्य को देखने की बात कही है जबकि सच्चाई ये है कि न तो तुरीयेण का अर्थ तुरी यन्त्र है और ना ही अविन्दत का अर्थ सूर्य है। वेद प्रतिष्ठित धरती भारत में वैदिक अध्ययन की प्रगति का ऐसा ही हाल रहा तो वह दिन दूर नहीं जब 'तच्चक्षुर्देवहितं .... शरदः शतमदीनाः स्याम .... शरदः शतात् (यजु. 36.24)" मन्त्र में आये हुए 'मदीनाः' शब्द का पता नहीं क्या कुछ अर्थ लगा लिया जायेगा।.... कल्पना करते हुए डर लगता है।

तुरीय एक विशेषण शब्द है ना कि संज्ञा। अगर आपको दूरवीन शब्द का अर्थ रखना होगा तो आपको 'तुरी यन्त्र' कहना होगा। इसके लिए कोई भी मानक संस्कृत शब्दकोष भी देख सकते हैं। तूर्य और तुरीय का आत्मा की चौथी अवस्था से तात्पर्य है। तुरी शब्द के तृतीया विभक्ति में "तुर्याः तुरिभ्याम् तुरीभ्यः" रूप बनते हैं न कि "तुरीयेन"। तुरी शब्द के अभिप्राय से आपको इस तरह कहना होगा, (एक उदाहरण) यथा - मेघैः आच्छादितं सूर्यं तुर्याः दृष्टवान्"। आम संस्कृत भाषा में भी 'तूर्य' भाषा का चतुर्थ ही अभिप्राय होता है। इसके लिए कतिपय उदाहरणों में से एक सटीक उदाहरण पं० कालिका प्रसाद शर्मा के 'सामुद्रिक शास्त्र' से दे रहा हूँ-

एक वर्षेअपि त्रिंशत् स्यात् द्विवर्षे द्विगुणं भवेत्।
त्रिवर्षै चैव नवतिः तूर्यवर्षे शताधिकम्।

पूर्वोक्त वेद मन्त्र (ऋग्वेद 5/40/6) के मन्त्र दृष्टा स्वयं अत्रि ऋषि हैं, वे मन्त्र में आये हुये शब्द की अभिज्ञा नहीं हैं। आया हुआ अत्रि शब्द भी एक विशेषण है और इसका बहुत अच्छा अर्थ पं० हरिशरण वेदालंकार ने अपने वेद भाष्य में किया है। जिज्ञासु भद्र जन देख सकते हैं।

ऐसे ही एक अनर्थ (ऋग्वेद 8/6/30) 'वासर' शब्द के सथ किया जा रहा है। कालांतर में यह शब्द 'वार' का पर्याय बन गया किन्तु वैदिक सन्दर्भ में इसका ये अर्थ कदापि नहीं है। "सुखं वासयति जनान् अर्थ से यह ज्योति के अर्थ में आया है। ज्योति सब को बसाने वाली और अंधकार विनष्ट करने वाली होती है।

शायद सभी को मालूम हो और जिनको न भी हो तो उनको भी ये बात मालूम हो जानी चाहिए कि

"ऋषयो मन्त्राणाम् द्रष्टारः सन्ति न तु कर्तारः। वेदाः ब्रह्मणो निःश्वासभूताः कथ्यन्ते। यतो हि वेदाः स्वयं प्रादुर्भूताः भवन्ति, तस्मादेव तेषाम् पुरुषकर्तृत्वं न सम्भवति।"

अब यह विचारने की बड़ी बात बनती है कि वे ऋषि जो "ध्यानावस्थित तद्गतेनमनसा पश्यन्तियं योगिनो. ... 'ध्यान मात्र के सर्वस्व के द्रष्टा पुरुष हैं उनको एक सूर्य को देखने के लिए आप 'दूरवीन यन्त्र' पकड़े हुए देख रहे हैं। सृष्टि के आदि में ये ऋषि क्या ऐसे किसी दूरवीन के साथ पैदा हुए थे?

इतनी जड़ क्यों हो गई है ये मनुष्य बुद्धि? सायन

भाष्य पर ऐसी टिप्पणी कुछ पाश्चात्य टिप्पणीकारों ने ही की है और ऐसी टिप्पणी करने से उनका कुचक्र वेदों की अपौरुषेयता के महान भाव को आघात पहुँचाना है और वही कर रहे हैं। ये तथाकथित 'वैदिक विद्वान्' भी। धन्य हैं, महर्षि दयानन्द सरस्वती, जिन्होंने इस कुत्सित विचार प्रवाह को अवरुद्ध किया है। आइये, यहाँ कुछ वेदपरक महान अवधारणााओं का पुनर्स्मरण कर लिया जाये-

1. जैसे मनुष्यों के शरीर से श्वास बाहर आ कर फिर भीतर को जाता है, उसी प्रकार सृष्टि के आदि में ईश्वर वेदों को उत्पन्न करके संसार में प्रकाश करता है। प्रलय में संसार में वेद नहीं रहते परन्तु उनके ज्ञान के भीतर वे बीजांकुरवत् सदा बने रहते हैं।

2. ईश्वर की विद्या होने से वेदों को नित्य ही जानना।

3. जिसने ब्रह्मा को उत्पन्न किया और ब्रह्मादि को सृटि के आदि में अग्नि आदि ऋषियों के द्वारा वेदों का उपदेश भी किया उसी परमेश्वर की शरण को हम लोग प्राप्त होवें।

यजुर्वेद 1-7 को उद्धृत करते हुए ये लोग असत्य कह रहे हैं कि इस मन्त्र में नक्षत्र विषयक बात की ही नहीं गयी है। वेदों में, अब तक जो मैं देख पाया हूँ अथर्ववेद 19-7-2 से 5 (देखें श्री मोहन कृति आर्ष तिथि पत्र-सं. 2070 पृ. 75) से अन्यत्र नक्षत्र क्रम और उनकी गिनती उपलब्ध नहीं है। ब्राह्मण, आरण्यक षडवेदांगादि जो 'विद्यास्थान' हैं उनमें अगर कहीं वैषम्य दिखे तो तब जो वेद में है, वही लिया जाना चाहिए। ...... और यही है स्वामी दयानन्द सरस्वती जी का वेदों के प्रति 'भद्रतम' भाव। इसी भाव से प्रेरित और प्रशिक्षित होना चाहता है दार्शनेय लोकेश। मेरा सब विद्वज्जनों से कहना है कि श्री मोहन कृति आर्ष तिथि पत्रक रूपी कार्य से इस प्रेरणा का ही कारण सम्बन्ध है।

अस्तु, उक्त तर्क जो कि यजुर्वेद के नवें अध्याय में आये हुए सातवें मन्त्र को जो 27 नक्षत्रों के समर्थन में दिया गया है, एक कुतर्क है। सभी लोगों से मेरा कहना है कि आप स्वयं देख लें और देखे बिना चुप न बैठ जाएँ। आप पाएंगे कि इस मंत्र में नक्षत्रों की तो बात ही नहीं की गयी हे, क्या 27 और क्या 28।

मनु.- "योअनधीत्य .... गच्छति सान्वयः" (-शास्त्रादेश है कि जन्मनाकश्चिदपि ब्राह्मणो न भवति, वेदाध्ययनरहितो शुद्रतुल्यो भवति।) लगता है कि कैसे भी तो वेद का उद्धरण रखते हुए इनमें, अपने को 'वेदज्ञ' अर्थात् ब्राह्मण जताने की भड़ास पनप रही है।।

वैसे तो इन और इन जैसी कई बातों का विषय विद्वान् सीमान्तिक उत्तर दे चुके हैं किन्तु कुछ अतिरिक्त है जो मुझे कहना है और खास कर उन सज्जनों से जो हिंदी के ही पाठक हैं।

फलित ज्योतिष के विरोध में जाते दीखते यथार्थ तथ्यों से ये तथाकथित विद्वान् घबरा उठे हैं क्योंकि इससे फलित ज्योतिष एक तिकड़म मात्र सिद्ध हो रहा है। अस्तु, 28 और समान नक्षत्र सुनना तो इनको 'वज्रपात' से कम नहीं लग रहा है। इसीलिए इनकी विवशता हो गयी है ऊल जलूल तर्क रखना। हम फलित ज्योतिष को केंद्र में रखते हुए कुछ नहीं कह रहे और ना ही सब के सब फलित ज्योतिषी ऐसे हैं। बहुत हैं जो पंचांग सुधार के रूप में श्री मोहन कृति आर्ष तिथि पत्रक का सम्मान कर रहे हैं। उनको भी हमारी तरह चिंता है वैदिक गरिमा और भारतीय 'वेद परक' संस्कृति की। हम वेदों की शरण है और जो वेदों के विरुद्ध हो उसे हम नहीं मान सकते। चाहे वह लकीर कितनी ही पुराणमित्येव .... (सन्दर्भ-कालिदास) क्यों न हो।

और हाँ, ज्योतिष के दृष्टिकोण से अगर किसी अन्य को भी संस्कृति की चिंता नहीं है तो वह आज का आर्य समाज। मैं इन सभी लोगों से दार्शनिक भाषा में कहना चाहता हूँ कि याद रहे, "येन माध्यमेन कस्यापि वस्तुनः स्वरुप ज्ञानं भवति तत अङ्.गं कथ्यते। अङ्.गानां माध्यमेन (षड वेदाङ्.ग) ही अङ्.गिनो (वेद) ज्ञानं संभवः"। ज्योतिष वस्तुतः वेदांगों में से ही एक अंग है और पंचांग, सांस्कृतिक तौर पर, ज्योतिष का एक अपरिहार्य निष्कर्ष है। जितना आवश्यक वेदों को सही

अर्थ में लेना है उतना ही आवश्यक है पंचांगों का भी सही रूप से जानना और स्वीकारना।

दूसरों को भटकांव से बाहर निकालने को प्रतिबद्ध आर्यजन नभस्य मास (भाद्रपद) की पूर्णिमा को रक्षा बंधन का त्यौहार मना रहे हैं। मैंने पहली जनवरी को नववर्ष दिवस मनाने को लेकर अनेकों लोगों को सरकारों व राजनेताओं को कोसते हुए सुना है। लेकिन अपने जन्म दिनों को अंग्रेजी तिथियों से मनाने में कोई संज्ञान नहीं। तब स्वदेशी ओर विदेशी का कोई भान नहीं। कैसे सुधरेंगे हम सब? क्या होगा हमारा? मैंने पंचांग के वैदिक आधार युक्त सिद्धांत से एक सुझाव रखा था, फेस बुक और व्यक्तिगत संदेश (SMS) के माध्यम से कि स्वामी दयानंद सरस्वती जी महाराज की जन्मतिथि को आर्ष तिथि पत्र के अनुसार माघ कृष्णा दशमी के रूप में मनाया जाना चाहिए और पूज्य पाद ऋषि द्वय (आदि शंकराचार्य जी एवं स्वामी दयानंद जी) के जन्म दिनों को राष्ट्रीय त्यौहार घोषित करवाया जाना चाहिए। परन्तु कोई भी सार्थक प्रतिध्वनि सुनाने को नहीं मिली है। यह सब इसलिए है क्योंकि हमने वेदों को भाषण विषय तो बना दिया किन्तु श्रद्धा और व्यवहार का विषय नहीं। प्रश्न ये है कि ये सब हम नहीं करेंगे तो फिर कौन करेगा?

जी, ये सावन नहीं भाद्र मास है। 21 जून को दक्षिणायन के साथ ही वर्षा ऋतु शुरू होती है, हुई है। श्रावण कृष्णा एकादशी की रात्रि को (22 जुलाई) सिंह संक्रांति के साथ नभस्य वैदिक मास शुरू हुआ है और तब पहला शुक्ल पक्ष भाद्र शुक्ल पक्ष हुआ। आर्य समाज के एक विद्वान् पुरुष को ऐसी सूचना दी जाने पर वे मुझसे प्रमाण माँगने लगे। मैंने उनसे डाकीय पता माँगा ताकि मैं अपने पंचांग की एक प्रति भेजूँ। कई दिन हो गए हैं, अभी तक तो उत्तर आया नहीं।

ऐसा नहीं है कि समाज के अन्य विद्वानों को आर्ष तिथि पत्रक, गया ही न हो। नहीं, बहुत से विद्वानों को गया है और चार-पाच को छोड़कर अधिसंख्यक ने देखने-समझने के बाद भी संज्ञान नहीं लिया है। इन कुछ कमजोरियों के चलते आर्य समाज के द्वारा वेद प्रचार के भरसक प्रयासों के बाद भी अभी यही प्रगति है कि

- यजुर्वेद 9/7 मंत्र को नक्षत्रों के पक्ष में देखा जा रहा है।
- स्वदेशिता के भावों से ओतप्रोत भी हम गलत तिथियों में या अंग्रेजी तिथियों में अपने जन्म दिन या पर्व मना रहे हैं।
- वेद के मन्त्रों का अनर्थ कर रहे हैं।
- व्यवहार के लिए वैदिक मार्गदर्शनों को भूल रहे हैं या उनको गौण कर रहे हैं।

ये सब अँधेरा छंटना चाहिए और एक मंगलमयी भोर वैदिक संस्कृति के अवगाहन की होनी चाहिए। वैदिक पंचांग भी उसी भवितव्यता की एक अनिवार्य कड़ी है। ओम शम्।

❑❑

पृष्ठ 16 का शेष

रहा है? इन देशों के समक्ष हमारे इस आर्यावर्त्त की ऐसी दुर्दशा क्यों हैं हमारे देश के अधिकांश लोग और उनका जीवन दयनीय, निकृष्ट, विपन्न, घृणित तुच्छ हेय क्यों है? हम चाहते ही नहीं हैं, चाहे तो हो सकता है।

- विश्व का भ्रमण करने के पश्चात् मेरी समझ में यही आया है कि हमने उन्नति की सीमा व्यक्ति या परिवार तक बना ली है। हमारे नगर, राज्य, राष्ट्र का नाम विश्व में हो, हमसे लोग प्रेरणा लें, सीखें, अनुकरण करें, यहा आवें, हमारा सम्मान करें, ये विचार कभी भी मन में उठते नहीं हैं तो कार्य क्या होगा। हे देव! हमारे देशवासियों को दयनीय दशा से उबारकर, सम्पन्न बनने की प्रेरणा आप ही प्रदान करो। हम अपनी लुप्त हुई गरिमा को पुनः जीवित करके, विश्व गुरु बनकर, "कृण्वन्तो विश्वमार्यम्" के आपके वेद उद्घोष को साकार करें, यही प्रार्थना है स्वीकार करें- ज्ञानेश्वरार्य

❑❑

हम सब प्राणी एक दूसरे को मित्र की दृष्टि से देखें

(मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून)

मित्रता दो व्यक्तियों का परस्पर एक मधुरता से पूर्ण सम्बन्ध होता है। यह सम्बन्ध कुछ इस प्रकार का होता है कि जब दोनों मिलते हैं तो अपने सुख-दुख व अन्य सभी बातें एक-दूसरे को बताते हैं मित्रों के सुख व दुःख का एक दूसरे को पता होता है। कोई किसी से कुछ छिपाता नहीं है। किसी भी बात को छिपाना मित्रता के धर्म के विपरीत होता है। अन्यों से पता लगने पर दूसरे मित्र को दुःख होता है। किसी भी प्रकार का यदि किसी एक पर संकट आता है तो दूसरा मित्र अपने संकटग्रस्त मित्र की हर प्रकार की सहायता करता है। हमारा प्रत्यक्ष ज्ञान पर आधारित एक अनुभव है। एक सम्पन्न युवा व्यक्ति थे। वह अपने आर्थिक दृष्टि से कमजोर मित्र को आवासीय भूखण्ड खरीदने के लिए प्रेरित करते थें एक बार भाव विभोर उन्होंने कहा कि भूखण्ड तुम खरीद लो, भवन मैं बनवा दूँगा। कुछ ही दिनों बाद एक सड़क दुर्घटना में उनकी मृत्यु हो गई यह घटना मित्र की भावनायें कैसे होती है, उसका एक उदाहरण है। एक दूसरा उदाहरण भी हमारे प्रत्यक्ष अनुभव पर आधारित है। एक व्यक्ति की पत्नी की तबियत अचानक बिगड़ गई। छुट्‌टी का दिन था। डॉक्टर ने तत्काल वृहत व जटिल ऑपरेशन कराने का परामर्श दिया। उस व्यक्ति के पास पैसे नहीं थे। उनके एक अन्य मित्र एक दम से सामने आये और सारी व्यवस्था कर दी। बाद में दोनों के बीच धन का लेन-देन हो गया। यदि उस समय उनकी सहायता न मिलती तो परिणाम सामने था। प्राणों का संकट समक्ष था और उस मित्र की सहायता ने उसे टाल दिया। यह भी अनुभव है कि विपरीत परिस्थितियों व आवास निर्माण में अनेक निकट मित्रों ने बिना कहे ही आर्थिक सहायता का प्रस्ताव किया। कुछ ने मना करने पर भी सहायता की। इस प्रकार का भाव सभी मित्रों में देखा जाता है। मित्रता प्रायः समान गुणों वाले दो व्यक्तियों में होती है जिनकी आयु भी लगभग समान व कुछ कम-ज्यादा होती है। दो मित्र वह होते हैं, जिनके हृदय परस्पर जुड़े हुए होते हैं। जिस या जिन-जिन से हमारी मित्रता होती है उनके प्रति हृदय में एक विशेष प्रकार का आदर, प्रेम, सहयोग की भावना, कल्याण की इच्छा व उन्हें सुख पहुँचाने की भावना होती है। गीता में श्री कृष्ण ने अर्जुन को सखा के नाम से सम्बोधित किया है। सखा शब्द भी मित्र का ही पर्यायवाची शब्द है। अर्जुन से मित्रता के सम्बन्ध होने के कारण श्री कृष्ण ने महाभारत के युद्ध में अर्जुन की सहायता की। यदि महाभारत पर दृष्टिपात करें तो हम देखते हैं कि श्री कृष्ण •

दुर्योधन या उसके सहयोगियों से अपनी कोई निजी शत्रुता नहीं थी। यह युद्ध सत्य व असत्य के बीच युद्ध था। श्री कृष्ण ने इसमें सत्य के पक्ष का साथ दिया। कृष्ण व अर्जुन के बीच दोस्ती से लगता है कि मित्रता एक ऐसा सम्बन्ध होता है कि जहाँ मित्र पर विपदा आने पर उसका मित्र उसकी पूरी सहायता करता है और उसका प्रयास होता है कि मित्र पर आई मुसीबत शीघ्रतम दूर हो जाये। कृष्ण व सुदामा की मित्रता तो

जन-जन में प्रसिद्ध है। दोनों एक साथ एक ही गुरु सन्दीपनी जी से गुरुकुल में पढ़ते थे। अध्ययन समाप्त होने के बाद दोनों अलग-अलग हो गये। सुदामा पर आर्थिक कष्ट आ गये। उन्हें सामान्य रूप से अपना जीवन व्यतीत करने में कठिनाईयाँ आई। उस मुसीबत के समय में सहायता के लिए सुदामा जी को मित्र कृष्ण की याद आई। वह उनके पास गये, दोनों परस्पर मिले और सुदामा जी की समस्या, चिन्ता व विपत्ति समाप्त हो गई यह मित्रता का उदाहरण है। हम स्वयं भी जब अपने जीवन पर दृष्टि डालते हैं तो पाते हैं जब-जब हमें किसी प्रकार की विपत्ति या कष्ट हुआ तो हमारी सहायता के लिए हमारे अनेक मित्र ही सामने आये और उनके सहयोग से हम अपने उद्देश्य की पूर्ति में सफल हुए। हम समाज में भी देखते हैं कि सभी लोग अपने-अपने मित्र बना कर रखते हैं उनसे मिलते जुलते रहते हैं। उनसे मिल कर प्रसन्न होते हैं। जब कभी उनका बाहर जाने व घूमने का कार्यक्रम होता है तो वह अपने प्रियजनों, जो मित्र की शर्तों को कम या पूरा पूरा निबाहते हैं, उनके साथ जाते हैं। इसका कारण घर से दूर यात्रा में उनमें सुरक्षा का भाव रहता है।

हम यहां संसार की सबसे प्राचीन पुस्तक वेद का उदाहरण लेते हैं। ऋग्वेद के एक मन्त्र में बताया गया है कि ईश्वर **"शं नो मित्रः शं वरूणः शं नो भवत्वर्य्यमा। शं न इन्द्रो बृहस्पतिः शं नो विष्णुरूरूक्रमः।।"** हमारा ऐसा मित्र है जो सदैव हमारा कल्याण चाहता है व करता भी है। अब यह कैसे जाने कि ईश्वर का अस्तित्व है और वह हमारा मित्र है? उसका कुछ-कुछ स्वरूप भी हमें ज्ञान होना चाहिये। हम इस संसार को तथा अपने व दूसरों के शरीरों को देखते हैं। मनुष्य इन्हें बना नहीं सकते। अन्य कोई ऐसी सत्ता व शक्ति समस्त संसार में दिखाई नहीं देती जो इन्हें बना सके, परन्तु यह बने हुए हैं, हम नए-नए मानव व अन्य प्राणियों के शरीरों को बनते हुए देख रहे हैं जो निश्चित रूप से संसार में एक दिव्य, विशाल, सर्वज्ञ, चेतन, बलवान, अनादि व अनुत्पन्न, अमर व अनन्त सत्ता के होने का प्रमाण है। उसी सत्ता को ईश्वर कहते हैं। यह संसार अत्यन्त विशाल है जिसकी पूरी कल्पना भी मनुष्य नहीं कर पाता है। इससे वह दिव्य सत्ता सर्वव्यापक सिद्ध हो जाती है। और विचार करने पर वह सत्ता सत्य, चित्त अर्थात् ज्ञानवान और कर्मशील, आनन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य पवित्र और सृष्टिकर्तासिद्ध होती है। ऐसा उसका स्वरूप है। वह ईश्वरीय सत्ता हमारी मित्र कैसे है? इस प्रकार से कि उसने हम जीवों या आत्माओं को सुख देने के लिए इस ब्रह्माण्ड व इसके समस्त पदार्थों, अन्न, दुग्धधारी पशु, फल के वृक्ष, जल, वायु औषधि आदि की रचना की है। यदि वह संसार या ब्रह्माण्ड की रचना न करता तो हम जीव लोगों का अस्तित्व होकर भी व्यर्थ का सिद्ध होता। हम मनुष्य या अन्य प्राणी योनियों में शरीर धारण नहीं कर सकते थे। उसने हम सबके लिए संसार को भी बनाया और हमें कर्म व भोग = सुख व दुःख के लिए शरीर प्रदान किये, इस कारण से वह हमारा मित्र सिद्ध होता है। यदि वह ऐसा न करता तो हम उसे मित्र न कहकर शत्रु कहते। अब तो वह निश्चित रूप से हमारा मित्र सिद्ध होता है और हम और सारा संसार उसका कृतज्ञ है। उसने कितनी सुन्दर व्यवस्था की है कि हमें माता, पिता, भाई, बहिन, सांसारिक मित्र, दादा, दादी, ताऊ,

चाचा, तायी, चाची, बुआ, फूफा, मौसी, मौसा, मामी, मामा, सहयोगी आदि दिये हैं। इतना ही नहीं हमारे भोग के लिए पूर्व उल्लिखित संसार के अनेक पदार्थ बना कर दिये हैं बहुत से पदार्थों का उपयोग तो हम विगत एक-दो शतकों से कर रहे हैं और बहुत से पदार्थ आज भी ऐसे हैं जिनका उपयोग हम इसलिए नहीं कर पा रहे हैं कि हमें उनके उपयोग का ज्ञान ही नहीं है। हमारे वैज्ञानिक अनुसंधान में संलग्न हैं और भविष्य में नये पदार्थ, उपकरण व उत्पाद हमारे सामने आयेंगे। वह हमारा मित्र कैसा है, उपर्युक्त मन्त्र में ही कहा गया है कि वह वरूण अर्थात् वरणीय, सर्वोत्त्कृष्ट, स्वीकारणीय व वरेश्वर है, अर्यमा अर्थात् पक्षपातरहित होकर न्याय का करने वाला है, इन्द्र अर्थात् परम ऐश्वर्यशाली है, बृहस्पति अर्थात् विद्या व वाणी का सर्वोत्तम महान स्वामी है जिसमें सुख की पराकाष्ठा है और जो धर्मात्मा मनुष्यों को अपना सुख व आनन्द प्रदान करता है, उसी परमात्मा से वेदवाणी व उस वेदवाणी के विकार से संसार में प्रचलित सभी वाणियां व भाषायें अस्तित्व में आई हैं, वह विष्णु अर्थात् सर्वव्यापक है, सर्वत्र विद्यमान है तथा उरूक्रमः है अर्थात् अनन्त बलशाली व पराक्रमी है। जब हम उस ईश्वर के शरणागत हो कर उसको याद करते हैं व स्मरण करते हैं तो उसका ध्यान करने से वह हमें हमारी पात्रता के अनुरूप सुख, शक्ति, शान्ति व सामर्थ्य आदि देता है व हमारी इच्छाओं को पूरा करता है। इस प्रकार से ईश्वर संसार में मनुष्यों का सर्वोपरि मित्र है। वह अनादि काल से हमारा मित्र है और अनन्त काल अर्थात् हमेशा हमारा मित्र रहेगा क्योंकि वह अजन्मा व अमर हैं तथा हम भी अजन्मे व अमर हैं उसका व हमारा अस्तित्व कभी समाप्त नहीं होगा। हम हमेशा-हमेशा साथ-साथ रहेंगे। यह सत्य ज्ञान हैं किसी को भी इसकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये। जो उपेक्षा करेगा वह अपनी बहुत बड़ी हानि करेगा जिसकी पूर्ति जन्म-जन्मान्तर में भी पूरी होगी या नहीं, कहा नहीं जा सकता।

यजुर्वेद 36/18 तो एक पूरा मन्त्र (**दृते दृम् ह मा मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्। मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे।**) ही ऐसा है जिसका मुख्य विषय ही "मित्र कैसा हो" का वर्णन कर रहा है। इस मन्त्र में ईश्वर को अनन्त बल, महावीर, दुष्ट-स्वभाव-नाशक विदीर्ण-कर्म, परम ऐश्वर्यवत्, सर्वसुहृदीश्वर, सर्वान्तर्यामिन्, परमात्मा बताया गया है और उससे प्रार्थना व विनय की गई है कि हे भगवन् मुझे स्थिर न रखकर गतिशील रखिये, क्रियाशील रखते हुए मुझे विद्या, सत्य धर्म आदि शुभगुणों में सदैव स्वकृपासामर्थ्य ही से स्थित करो। मुझको धर्म, अर्थ, काम, मोक्षादि तथा विद्या-विज्ञान आदि दान से अत्यन्त बढ़ाओ, मुझे सब प्राणी मित्र की दृष्टि से देखें, सब मेरे मित्र हो जायें, कोई मुझसे किंचितमात्र भी वैर-दृष्टि न करें। मैं निर्वेद होकर सब प्राणी और अप्राणी चराचर जगत् को मित्र दृष्टि से स्वात्म (अपनी आत्मा के समान) स्वप्राणवत् प्रिय जानू अर्थात् पक्षपात छोड़के सब जीव व देहधारीमात्र अत्यन्त प्रेम से परस्पर वर्तमान करें। अन्याय से युक्त होके किसी पर कभी हम लोग न वर्तें। वस्तुतः मनुष्य का कर्तव्य ही उसका धर्म कहलाता है। किसी विद्वान् या महापुरुष द्वारा प्रवर्तित विचारधारा मत या मजहब हो सकती है, धर्म कदापि नहीं। धर्म का संस्थापक तो ईश्वर ही होता है जो कि सब मनुष्यों व प्राणियों का सदा-सर्वदा मित्र है और रहेगा और वही वेद के रूप में सृष्टि के आरम्भ में धर्म का उपदेश करता है। बाद में महापुरूषों द्वारा जो

मत संस्थापित होते हैं वह मजहब, सम्प्रदाय या मत होते हैं, उन्हें धर्म होना स्वीकार नहीं किया जा सकता। वेदों में ईश्वर ने उपदेश दिया है कि वह सभी प्राणियों का मित्र है और उसका अनुकरण कर सब प्राणियों को एक दूसरे का मित्र बनना चाहिये। आज स्थिति इसके विपरीत है। इसमें सुधार की आवश्यकता है। इस संसार में पूर्ण सुख तभी होगा जब संसार के लोग एक दूसरे के सब तरह से मित्र बन जायेंगे। इस मित्रता व दोस्ती के भाव जो कि परमधर्म है, का सब मनुष्यों के लिए परमात्मा ने उपदेश किया है। ऋग्वेद के एक मन्त्र में ईश्वर को "इन्द्रस्य युज्यः सखा" कहकर उसे मनुष्य आदि प्राणियों का सच्चा व योग्य मित्र कहा गया है। ईश्वर से बढ़कर मनुष्य व अन्य प्राणियों का कोई मित्र नहीं है।

मित्रता व दोस्ती से दोनों को लाभ होता है व शत्रुता से दोनों को हानि होती है अतः हमें सबसे मित्रता करनी चाहिए और शत्रुओं को भी यदि मित्र बनाया जा सकता हो तो बनाना चाहिये। इतिहास में राम व सुग्रीव, कृष्ण-सुदामा तथा राम-विभीषण की मित्रता के उदाहरण स्पष्ट हैं कि दो व्यक्तियों की मित्रता से दोनों को लाभ होता है। वहीं राम व रावण तथा दुर्योधन व पाण्डवों की शत्रुता से यह परिणाम निकलता है जो असत्य पर होता है, उसका विनाश हो जाता और सत्य विजयी होता है। मित्रता सत्य व्यवहार का प्रतीक है और शत्रुता असत्य व्यवहार का। सभी मनुष्यों को प्रतिदिन आत्म चिन्तन करना चाहिये और अपने हृदय से असत्य व शत्रुता के भावों को निकाल कर उनके स्थान पर सत्य व मित्रता के भावों को स्थान देना चाहिये।

पृष्ठ 15 का शेष

संसद में कैसे-कैसे छल हुये हैं।

लिफ्ट क्रमांक तीन पर लिखा हुआ है-

"दया मैत्री च भूतेषु दानम् च मधुरा च वाक्।
न ही दृशम् संवननं त्रिषुलोकेषु विद्यते।।"

महाभारत (विदुर नीति)

इसका भाव यह है कि प्राणी मात्र पशु-पक्षी मनुष्य आदि सबके प्रति दया, प्राणी मात्र से मित्रता, मधुर वचन और दान देने की प्रवृत्ति (केवल धन दान नहीं या भूमिदान ही नहीं, बल्कि श्रमदान, विद्यादान आदि) संसार में दुर्लभ है। इस सूक्ति का यह आशय है कि सभासद, जनप्रतिनिधि इन मानव गुणों से अपने को परिपूर्ण बनाये रखे।

लिफ्ट क्रमांक चार पर शासक के राजधर्म पालन का मार्गदर्शन करने वाला शुक्रनीति का निम्न श्लोक लिखा हुआ है-

"सर्वदा स्यान्नृपः प्राज्ञः, स्वमते न कदाचन।
सभ्याधिकारिप्रकृति-सभासत्सुमते स्थितः।।"

शुक्रनीतिः (2/3)

इसका आशय यह है कि हमारी कार्यपालिका, प्रधानमन्त्री और उनके मन्त्रिमण्डल के सदस्य विद्वान् हों, किन्तु अपनी बात पर हठपूर्वक अड़े न रहें। उन्हें सभासदों के विचार और परामर्श से निर्णय लेना उचित है।

संसद भवन के इन संदेशों के परिप्रेक्ष्य में हमारा हृदय उन अपने पूर्व पुरुषों की सूझ-बूझ पर श्रद्धा से भर उठता है। आज के संसद सदस्यों के अनेक बार अनुचित आचरणों से और मन्त्रिमण्डलीय अनुचित निणयों को देखते हुये इन संदेशों का महत्व बहुत बढ़ जाता है।

आर./आर. नं० १६३३०/६७ सितम्बर २०१४
Post in Delhi R.M.S
०१-०७/६/२०१४

सितम्बर 2014

रजिस्टर्ड नं० DL (DG -11)/8029/2012-14
लाईसेन्स नं० यू (डी०एन०) १४४/२०१२-१४
Licenced to post without prepayment
Licence No. U (DN) 144/2012-14

पाठकों से निवेदन

१. अपने पत्रों में अपनी ग्राहक संख्या अवश्य ही लिखा करें, अन्यथा कार्यवाही सम्भव नहीं होगी।
२. १५ तारीख तक प्रतीक्षा करके ही दुबारा अंक मँगाएं, यदि अंक न पहुँचा हो।
३. यदि आप अपना पता बदलवायें तो यह ध्यान रखें कि बदले हुए पते पर अंक-प्रेषण एक माह बाद आरम्भ होगा।
४. अंक के रेपर पर अपना पता चैक कर लिया करें। यदि कोई त्रुटि हो, तो सूचना दे दिया करें।
५. जिन ग्राहकों का शुल्क समाप्त है, अविलम्ब भेजने की कृपा करें।

— दिनेश कुमार शास्त्री
कार्यालय व्यवस्थापक
मो०-९६५०५२२७७८

ओ३म्

भारत में फैले सम्प्रदायों की निष्पक्ष व तार्किक समीक्षा के लिए उत्तम कागज़, मनमोहक जिल्द, सुन्दर आकर्षक छपाई एवं (द्वितीय संस्करण से मिलान कर शुद्ध प्रामाणिक संस्करण)

सत्य के प्रचारार्थ

सत्यार्थ प्रकाश

सत्य के प्रचारार्थ

• प्रचार संस्करण (अजिल्द) 23×36÷16	मुद्रित मूल्य 50 रु.	प्रचारार्थ 30 रु.	प्रचारार्थ मूल्य पर कोई कमीशन नहीं
• विशेष संस्करण (सजिल्द) 23×36÷16	मुद्रित मूल्य 80 रु.	प्रचारार्थ 50 रु.	
• स्थूलाक्षर सजिल्द 20×30÷8	मुद्रित मूल्य 150 रु.		प्रत्येक प्रति पर 20% कमीशन

10 या 10 से अधिक प्रतियाँ लेने पर विशेष अतिरिक्त कमीशन

कृपया, एक बार सेवा का अवसर अवश्य दें और महर्षि दयानन्द की अनुपम कृति सत्यार्थ प्रकाश के प्रचार प्रसार में सहभागी बनें

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट
427, मन्दिर वाली गली, खारी बावली, दिल्ली-6
Ph. :011-43781191, 09650622778
E-mail : aspt.india@gmail.com

छपी पुस्तक/पत्रिका

श्री सेवा में...
ग्राम...
डा०...
जिला...

प्रकाशक : धर्मपाल आर्य, ४२७, मन्दिर वाली गली, नया बांस, खारी बावली, दिल्ली-६
मुद्रक : तिलक प्रिंटिंग प्रेस, २०४६, बाजार सीताराम, दिल्ली-६